जैन इतिहास

लेखक

वैराग्यवारिधि आयडतीर्थोद्धारक

प.पू.आ.श्रीमद् विजय कुलचंद्रसूरीश्वरजी म.सा.

आयड तीर्थोद्धारक, वैराग्यवारिधि
प.पू.आचार्य श्री कुलचंद्रसूरीश्वरजी म.सा.नी
लेखित-संपादित-प्रेरित साहित्ययात्रा

१. श्री कल्पसूत्र - अक्षरगमनिका (प्रताकार)
२. श्री श्राद्धविधि प्रकरण - संस्कृत (प्रताकार)
३. श्री आचाराङ्ग सूत्र-अक्षरगमनिका (प्रथम श्रुतस्कन्ध)
४. श्री आचाराङ्ग सूत्र-अक्षरगमनिका (द्वितीय श्रुतस्कन्ध)
५. श्री सूत्रकृताङ्ग सूत्र-अक्षरगमनिका (प्रथम श्रुतस्कन्ध)
६. श्री सूत्रकृताङ्ग सूत्र-अक्षरगमनिका (द्वितीय श्रुतस्कन्ध)
७. श्री श्राद्ध-जीतकल्प
८. नव्य यतिजीतकल्प
९. श्री महानिशीथ सूत्र
१०. श्री पञ्चकल्पभाष्यचूर्णी
११. न्यायावतार-सटीक
१२. मुहपत्ति चर्चा
१३. श्री विंशतिविंशिका प्रकरण (गुजराती)
१४. श्री विंशतिविंशिका प्रकरण-(सटीक)
१५. श्री मार्गपरिशुद्धि प्रकरण-(सटीक)
१६. सुलभ धातु रूप कोश
१७. संस्कृत शब्द रूपावली
१८. संस्कृत अद्यतनादि रूपावली
१९. सुबोध संस्कृत मार्गोपदेशिका (संस्कृत बुक-१)
२०. सुबोध संस्कृत मन्दिरान्तः प्रवेशिका (संस्कृत बुक-२)
२१. कर्म नचावत तिमहि नाचत - (गुजराती)
२२. सुखी जीवननी मास्टर की - (गुजराती)
२३. जीव थी शिव तरफ - (गुजराती)
२४. तत्त्वनी वेबसाईट - (गुजराती)
२५. भक्ति करतां छूटे मारा प्राण - (गुजराती)

॥ श्री आत्म-कमल-वीर-दान-प्रेम-भुवनभानु--जयघोषसूरिसद्गुरुभ्यो नमः ॥

जैन इतिहास

लेखक

सिद्धांतमहोदधि

स्व. प.पू.आ. श्री प्रेमसूरिश्वरजी म.साहेब के

चरमशिष्यरत्न

प.पू. वैराग्यवारिधि आचार्यदेव

श्रीमद् विजय कुलचंद्रसूरीश्वरजी महाराजा

-: मूल्य :-

विमोचन चैत्र वद २, दि. २४-०४-२०१६

(पूज्यश्री का संयम सूवर्ण दिन)

-: प्राप्ति स्थान :-

दिव्य दर्शन कार्यालय

३९, कलिकुंड सोसायटी, मफलीपुर चार रास्ता,

धोळका - ३८७८१०. जि. अहमदाबाद (गुज.)

फोन : ०२७४१४ - २२५४८२, २२५९८१

डॉ. संजयभाइ शाह

मेघ मयुर ग्रुप ओफ कंपनी

O/B/5, त्रिभुवन कोम्पलेक्ष, घोड दोड रोड,

सूरत - ३९५००७. फोन : ०२६१- २६६९७१-४

मो.: ९८२५१ २१४५५

बाबुलालजी सरेमलजी

श्री आशापुरण जैन ज्ञान भंडार, हीरा जैन सोसायटी,

रामवाडी, साबरमती, अहमदाबाद (गुज.)

मो.: ९४२६५ ८५९०४

श्री शंखेश्वर पार्श्वनाथ श्वे. मू.तपा जैन संघ

मातुश्री जयालक्ष्मी आराधना भवन

११५, डॉ. मनुभाई पी. वैद्य मार्ग, तिलक रोड,

घाटकोपर (ई), मुंबई - ४०००७७.

मो.: कीर्तिभाई : ९८२०७६५०९८, रोहितभाई : ९८९२०८१४३९

-:: मुद्रक ::-

राजुल आर्टस, घाटकोपर,मुंबई .मो.: 9869390285,9769791990

समर्पण.... समर्पण.... समर्पण....

परम पूज्य गुरुदेवने समर्पण...

शिल्पी बनी अनेक साधुओने घडनारा,

जिनशासनने विशाळ साधु समुदायनी भेट धरनारा,

विपुल कर्म-साहित्यनुं नवनिर्माण करनारा,

उत्कृष्ट निर्मळ संयमनुं पालन करनारा,

एवा सिद्धांत महोदधि,

कर्मसाहित्यनिष्णात

परम पूज्य आचार्यदेव

श्रीमद् विजय प्रेमसूरश्वरजी म.साहेबना

करकमलमां सादर समर्पण....

प.पू.आ. श्री कुलचंद्रसूरीश्वरजी म.साहेब

अनुमोदना...

अनुमोदना...

अनुमोदना...

सिद्धांत महोदधि, कर्म साहित्यनिष्णात

प.पू.आ. देव श्रीमद् विजय प्रेमसूरिश्वरजी म.सा.नी

स्वर्गारोहण अर्धशताब्दि (२०२४-२०७४) निमित्ते

तथा

वैराग्यवारिधि, आयड तीर्थोद्धारक

प.पू. आचार्यदेव श्रीमद् विजयकुलचंद्रसूरिश्वरजी म.सा.ना

५० वर्षना संयम जीवनना (२०२३-२०७३)

सुवर्ण अवसरे

आ ग्रंथना लाभार्थी

स्व : ताराबाई रतनचंदजी सवाईमलजी तलेसरा परिवार

पुत्र : रमेशकुमार , पुत्रवधु : आशा

पौत्री : शिवांगी, ऐश्वर्या, नेहा

सादड़ी (राज:)

हाल भायखला-मुंबई.

प्रकाशकीय निवेदन

पाठकवर्ग के समक्ष 'जैन इतिहास' प्रस्तुत करते हम आन्तरिक प्रमोद का अनुभव कर रहे हैं । यह अपने ढंग की एक अद्वितीय रचना है । इसके अध्ययन से पाठकों को अपने गौरवमय अतीत का बहुत कुछ आभास हो सकेगा । प्रस्तुत पुस्तक न बहुत बृहत्काय है और न अति संक्षिप्त हो । इस कारण सभी श्रेणी के पाठकों को समान रूप से उपयोगी सिद्ध होगी । विशेषतः धार्मिक शिक्षण-शिबिरों के लिए तो अत्यन्त आवश्यक और उपयुक्त रहेगी ।

प्रस्तुत पुस्तक के रचयिता परमपुज्य विद्वद्रत्न आचार्य श्री कुलचन्द्रसूरीश्वरजी म.साहेब प्रख्यात साहित्यमनीषी हैं । आपकी और से शिबिरोपयोगी साहित्य पूर्व में भी लिखा गया है । साथ ही आचारांगसूत्र एवं कल्पसूत्र की सुबोधिका आदि अनेक टीकाओं की भी रचना की गई हैं । आचार्य श्री सतत साहित्यसंरचना में तत्पर हैं और आपश्री की रचनाएँ युग की आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर होने से महान् उपकारक हैं । इस महान् उपकार के प्रति हम किन शब्दों में कृतज्ञता प्रकट करें ? वास्तव में हमारे पास पर्याप्त शब्द नहीं हैं । आशा है भविष्य में भी आपकी ओर से श्री संघ को साहित्यक बहुमूल्य प्रसाद प्राप्त होता रहेगा ।

हमारा बडा सौभाग्य है कि इस रचना को प्रकाशित करने का सुअवसर हमें प्राप्त हुआ है । पूर्ण विश्वास है कि प्रस्तुत रचना से पाठकगण पूरा - पूरा लाभ उठाएँगे । इति शुभम् ।

– दिव्यदर्शन ट्रस्ट

सम्पादकीय

इतिहास अतीत का दर्पण है। यदि उसका प्रामाणिक पूर्वक निष्पक्ष भाव से निर्माण किया जाय तो उससे प्राचीन काल के समाज का सही प्रतिबिम्ब वर्तमान में देखा जा सकता है। उससे ज्ञान की वृद्धि होती है, साथ ही भविष्य-निर्माण की भी प्रेरणा मिलती है। हम अपने पूर्वज महापुरुषों के उदात्त चरित्र से गौरव अनुभव करते हैं और उनके अनुकरण की प्रेरणा प्राप्त करते हैं। धार्मिक महान् पुरुषों से तो विशेष प्रेरणा मिलती है। उनका आदर्श चरित्र हमें साहस, धैर्य और गति प्रदान करता है। यह इतिहास की सार्थकता है।

जैसे लौकिक-व्यवहारिक शिक्षा बालकों और नवयुवक को देना-दिलाना अनिवार्य समझा जाता है, इसी प्रकार इतिहास और उसमें भी धार्मिक इतिहास के अध्ययन को भी अनिवार्य समझना चाहिए। लौकिक जीवन में जैसे व्यवहारिक शिक्षा उपयोगी है, उसी प्रकार आध्यात्मिक जीवन के निर्माण के लिए धार्मिक शिक्षण भी अनिवार्य रूप में उपयोगी है।

प्रसन्नता है कि विद्वान् वैराग्यवारिधि आचार्य श्री कुलचन्द्रसूरिश्वरजी म.साहेब ने इस ओर विशेष ध्यान ही नहीं दिया अपितु बालजनों के बोधार्थ 'जैन इतिहास' नामक इस पुस्तक की रचना भी की। निस्सन्देह यह संक्षिप्त पुस्तक अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होगी- छात्रों के लिए भी और अन्य जनों के लिए भी। अतएव संघ इस रचना के लिए आचार्यश्री का अत्यन्त आभारी है। आप संयमसाधना के साथ साथ साहित्य की उपासना में भी निरत रहते हैं। आपकी अनेक महत्वपूर्ण रचनाएँ इससे पूर्व भी प्रकाशित हो चुकी हैं। आशा है समाज इस रचना से लाभ उठाएगा और आचार्यश्री के इस कठिन श्रम को सार्थक करेगा।

-सम्पादक

अपनी बात

ज्ञानसत्र के विद्यार्थीयों को जैन इतिहास से भी कुछ परिचित कराना आवशयक समझ कर संक्षेप में यह पुस्तिका लिखी गई है। उल्लेखनीय है कि सम्पादक महोदय श्री शोभाचन्द्रजी 'भारिल्लजी' ने भाषाकीय दृष्टि से इस पुस्तिका को साद्यन्त देखकर कहीं कहीं सम्मार्जन किया। विद्यार्थीगण इस पुस्तिका का अध्ययन कर अनंत उपकारी भगवान् महावीरस्वामी, उनके आज्ञाधारी गुरुभगवंत और पूर्व के महान् श्रावकों के जीवन का परिचय पाकर अपने जीवन में त्याग, वैराग्यादि गुणों का अभ्यास करें और विश्वकल्याण-कर जैनधर्म की सेवा के महान् कार्य में अपना योगदान देवें, यहीअभिलाषा।

–गणि कुलचन्द्रविजय

जैन इतिहास

भूतकाल की घटनाओं के संग्रह को इतिहास कहते हैं।

इतिहास अवश्य जानना चाहिए। इतिहास से संबन्धित महापुरुषों के आदर्श जीवन से हमारी बुद्धि भी सुन्दर जीवन के प्रति स्थिर बनती है। स्व और पर का हित करने के लिए हम उत्साहित बनते हैं और आदर्श जीवन-पथ पर अग्रसर होते है।

विश्व अनादि है

विश्व अर्थात् चराचर जगत् अनादि है। जो कोई शंका करते है कि विश्व का निर्माण ईश्वर ने किया, तब अनादि कैसे ? उनकी इस शंका के समाधान हेतु निम्न बातें विचारणीय है -

जगत-कर्त्ता ईश्वर का खण्डन

(१) पुण्य-पाप से रहित ईश्वर शरीर को धारण नहीं कर सकता है और शरीर के बिना जगत्-सर्जन रूप कार्य असंभव है। इतना ही नहीं, किन्तु शरीर न होने से उनके मुँह भी न होगा और बिना मुख के वह उपदेश आदि भी नहीं दे सकता है। तो वह ईश्वर कैसे कहलायेगा ?

(२) ईश्वर कृतार्थ होने से जगत्-सर्जन का उसे कोई प्रयोजन भी नहीं है।

(३) स्वयं को कोई प्रयोजन न होने पर भी किसी दूसरे की आज्ञा से ईश्वर को जगत् का सर्जन करना पडे, यह बात भी उचित नहीं है, क्योंकि ईश्वर स्वतंत्र है, वह किसी के आधीन नहीं है।

(४) प्रयोजन न होने पर भी लीला अर्थात् खेल के लिए जगत्-सर्जन की प्रवृत्ति करे तो उस ईश्वर के लिए बालक की तरह रागी अर्थात् खिलवाडप्रिय होने की आपत्ति आती है।

(५) ईश्वर वीतरागी होने पर भी दया से प्रेरित होकर यदि जगत्-सर्जन की प्रवृत्ति करता तो पूरे जगत् को सुखी बनाता। दुःख, दरिद्रतादि से बेचैन संसार के सर्जक ईश्वर को दयालु भी नहीं कह सकते हैं।

(६) यदि ईश्वर जीवों को उनके शुभ-अशुभ कर्मों के अनुसार ही सुखी या दुःखी बनाता है, तब तो ईश्वर स्वतंत्र रीति से जीवों को सुखी दुःखी बनाने में असमर्थ सिद्ध हुआ।

इस स्थिति में तो यही मानना उचित है कि जीवों को शुभ-अशुभ कर्म ही उन्हें सुखी-दुःखी बनाते हैं। बीच में निकम्मे ईश्वर की कोई आवश्यकता नहीं है।

(७) यदि कोई कहे कि ईश्वर का स्वभाव ही जगत्-सर्जन का है, इसमें तर्क अर्थात् दलील नहीं करनी चाहिए, तो 'ईश्वर जगत् का सर्जक है' यह बात तर्क की कसौटी पर उड गई।

(८) जगत्-सर्जक ईश्वर को यदि अनादि मानते हो तो पूरे जगत् को ही अनादि मान लेने से ऊपर कहे दोषों को अवकाश नहीं रहेगा और ईश्वर में लघुता भी नहीं आएगी।

(९) जगत् के समस्त चराचर पदार्थों के ज्ञान को ही यदि ईश्वर का जगत्-सर्जन और इसे ही विश्व-व्यापकता मानते हो तो यह हमें भी मान्य है। सर्वज्ञ परमात्माओं को हम भी मानते हैं, जो (१) छत्र-चामरादि आठ प्रातिहार्यों से युक्त अरिहंत प्रभु साकार है और (२) सिद्ध भगवंत निराकार हैं।

सारांश-जगत् अनादि है। न किसीने इसे बनाया है, न कोई इसका विनाश करता है और न कोई इसका संचालन या रक्षण करता है। किन्तु यह जगत् स्वयंभू है और स्वयं संचालित है।

धर्म, धर्मी और मोक्ष अनादि है

ऐसे अनादि जगत् में धर्म-शासन के संस्थापक तीर्थंकर परमात्मा, धर्मोपदेश, धर्म के पालक साधु-साध्वी और श्रावक-श्राविका रूप चतुर्विध संघ और धर्म का चरम फल मोक्ष-प्राप्ति भी अनादि काल से है। महाविदेह क्षेत्र में सदा तीर्थंकर परमात्मा और उनका शासन रहता है। अतः जगत् की तरह धर्म, धर्मी और मोक्ष भी शाश्वत है।

भरत आदि कर्मभूमिक क्षेत्रों में भी भूतकाल में अनन्त चोबीसियों में अनन्त तीर्थंकर भगवन्त हो गये है और भविष्य में भी होने वाले हैं। इस अवसर्पिणीकाल में हमारे भरत क्षेत्र में जो चौबीसी हुई उसके प्रथम तीर्थंकर श्री ऋषभदेव हुए और अन्तिम तीर्थंकर श्री महावीरस्वामी हुए। इसी तरह भरत महाराजा आदि १२ चक्रवर्ती, ९ वासुदेव, ९ प्रतिवासुदेव और ९ बलदेव हुए। इन महापुरुषों का जीवन-

चरित्र त्रिषष्टिशलाका पुरुष आदि ग्रन्थों से जानें।

तीर्थंकर परमात्मा श्री महावीर स्वामी

इनमें चरम तीर्थपति श्री महावीर स्वामी हमारे समीप के उपकारी है क्योंकि हमें सौभाग्य से इन्हीं का धर्मशासन प्राप्त हुआ है। अतः हम इन्हीं से इतिहास का प्रारम्भ करेंगे।

जन्म

मगध देश के क्षत्रियकुण्ड नगर में सिद्धार्थ राजा की रानी त्रिशला क्षत्रियाणी की कुक्षि से चौदह महास्वप्नों से सूचित महावीर स्वामी का जन्म विक्रमसंवत् पूर्व ५४३ एवं ईसवी सन् पूर्व ५९९ वर्ष में चैत्र शुक्ला त्रयोदशी को हुआ। छप्पन दिक्कुमारी, ६४ इन्द्र, सिद्धार्थ राजा और प्रजा ने जन्मोत्सव किया। प्रभु का नाम **वर्धमान** रखा गया।

विवाह एवं परिवार

वर्धमान ने युवावस्था में **यशोदा** नाम की राजपुत्री से शादी की। उससे **प्रियदर्शना** नाम की पुत्री हुई, जो **जमालि** नाम के राजपुत्र से ब्याही गई। उससे एक पुत्री का जन्म हुआ जो भगवान् की दोहित्री कहलाई। उसके दो नाम थे- **अणोज्जा** (**अनवद्या**) और **शेषवती**।

माता-पिता का स्वर्गवास

अट्ठाईस वर्ष की उम्र में माता-पिता अनशन करके स्वर्गवासी हुए। प्रभु बिरागी होने पर भी अपने बडे भाई नन्दिवर्धन महाराजा के आग्रह से दो साल और संसार में रहे। इसी बीरागी अवस्था की मूर्ति सुवर्णकार कुमारनन्दि के जीव व्यन्तर देव ने श्रेष्ठ जाति के चन्दन से बनाई जो कुछ समय तक सिन्ध के वीतभयनगर में राजा उदायी और रानी प्रभावती द्वारा पूजी गई। बाद में कपट से राजा चण्डप्रद्योत इस प्रतिमा को अवन्ती ले गया। वहाँ सदियों तक जीवित स्वामी के नाम से पूजी गई।

दीक्षा

तीस वर्ष की उम्र में मार्गशीर्ष कृष्ण दशमी को संसार त्याग कर स्वयं ने दीक्षा ली।

भगवान् और उनके सम्बन्धियों के नाम

भगवान् के तीन नाम थे (१) माता-पिता का दिया हुआ **'वर्धमान कुमार'**, (२) देवों की सभा में दिया हुआ **'महावीर'** और (३) तपस्या आदि की स्वाभाविक शक्ति से वे **'श्रमण'** कहलाये।

भगवान् के चाचा का नाम **'सुपार्श्व'** था जो आगामी चौबीसी में तीर्थंकर होने वाले हैं।

भगवान् की बडी बहिन का नाम **'सुदर्शना'** था।

दीक्षा दिन से लगाकर साढे बारह वर्ष तक भगवान् ने घोर तप किया। देवों, मनुष्यों और तिर्यंचों द्वारा किये गये अनेक उपसर्गों को क्षमापूर्वक सहा। शूलपाणि यक्ष ने मन्दिर में ध्यान लगाये खडे प्रभु पर अनेक उपसर्ग किये। नाव पर चढकर गंगा नदी पार करते समय सुदंष्ट्र नाम के देव ने नाव डुबाने का प्रयत्न किया। किसी सरोवर के किनारे कडी सर्दी के दिनों में ध्यान में खडे प्रभु पर कटपुटना देवी ने सरोवर के अति शीतल जल को सींचा। संगम देव ने एक ही रात में प्राणघातक बीस उपसर्ग किये। पश्चात् भी छः महीने तक वह छोटे-बडे उपद्रव करता रहा। ग्वाला द्वारा कानों में कीले लगाये गये। अनार्यो द्वारा भी अनेक कष्ट दिये गए। इन उपसर्गों को भगवान अपने ही अशुभ कर्म का फल समझकर सम-भाव से सहन किया।

कनकस्खल तापस के आश्रम में चण्डकौशिक सर्प ने प्रभु के पाँव में दंश दिया। प्रभु ने करुणा भाव से 'बुज्झ बुज्झ चंडकोसिया' कहकर उसे शांत किया। यह स्थान आज भी राजस्थान के सिरोही जिले में 'कनखला' गाँव के नाम से प्रसिद्ध है।

इसी सिरोही जिले के मुंडस्थल ग्राम में जहाँ अपने जन्म से ३७ वें और दीक्षा से सातवें वर्ष में प्रभु रात भर ध्यान में खडे रहे, उसकी पुण्य स्मृति में वहाँ के राजा नूनपाल ने मन्दिर का निर्माण करवाकर प्रभु की खड्गासन प्रतिमा की प्रतिष्ठा श्री पार्श्वनाथ प्रभु की पट्ट-परंपरा के पाँचवें आचार्य श्री केशी गणधर से करवाई। वीर-जन्म ३७ का शिलालेख आज भी वहाँ है।

केवलज्ञान और चतुर्विध संघ की स्थापना

इस प्रकार कठिन कर्मों का क्षय कर के बयालीस वर्ष की उम्र में वैशाख शुक्ल दशमी के दिन चौथे प्रहर में मधुवन से करीब तीन कोस पूर्व ऋजुवालुका नदी के किनारे गोदोहिका आसन में प्रभु को केवलज्ञान हुआ। वहाँ प्रथम देशना दी, जो निष्फल गई। पश्चात् वहाँ से बारह योजन विहार कर उत्तर दिशा में रही पावापुरी नगरी के महसेन वन में जाकर वैशाख शुक्ल एकादशी के दिन देशना दी और वही पर चतुर्विध संघ की स्थापना की।

इन्द्रभूति आदि ग्यारह विद्वान् ब्राह्मणों को दीक्षा देकर गणधर पद पर प्रतिष्ठित किया। इन्हीं विद्वानों के ४४०० शिष्यों को साधु पद पर और राजकुमारी चन्दन-

बाला आदि को साध्वी पद पर स्थापित किया। आनन्द, कामदेव आदि को श्रावक एवं रेवती, सुलसा आदि को श्राविका बनाया।

धर्मोपदेश

भगवान् ने उपदेश लोकभाषा प्राकृत-अर्धमागधी के माध्यम से दिया। परमाणु से लगाकर आकाश तक के सभी पदार्थों का स्वरूप दर्शन कराते भगवान् ने कहा- **"उप्पन्नेइ वा, विगमेइ वा, धुवेइ वा"**। इस त्रिपदी का अर्थ है : पदार्थ उत्पन्न भी होता है, नष्ट भी होता है और स्थिर भी रहता है। जैसे सुवर्ण के घट से जब मुकुट बनता है तब घट की आकृति नष्ट होती है, मुकुट की आकृति उत्पन्न होती है और सुवर्ण बना रहता है। जीव तत्त्व के विषय में भगवान् ने कहा-

यह जीव अनादि है। खान में सोने के साथ मिट्टी लगी रहती है उसी तरह जीव के साथ अनादि काल से कर्म-मेल लगा हुआ है। इसी कर्मदोष से जीव नारक, तिर्यंच, मनुष्य आदि विचित्र अवस्थाओं को पाता है। भिन्न-भिन्न योनियों में उत्पन्न होता है, जहाँ जन्म, जरा, मृत्यु, रोग, शोक से हेरान होता है। दरिद्रता आदि दु:खों से दबा रहता है। अप्रिय के संयोग और प्रिय के वियोग के भय से सदा भयभीत रहता है। मोह और अज्ञान के वश विवेक से भ्रष्ट होता है। सन्निपात के रोगी की तरह हित और अहित को नहीं जानता है। अहितकारी प्रवृत्तियों का आदर करता है और हितकारी प्रवृत्तियों की उपेक्षा करता है। इस प्रकार जीव अनेक संकटों को पाता है।

इस स्थिति से बचने के लिए मोह और अज्ञान का त्याग करें। सत्य की सदा खोज करें। देव, गुरु और अतिथिजन की पूजा करें। दीन दु:खियों का उद्धार करें। निन्दनीय प्रवृत्तियों का त्याग करें। जीव मात्र के प्रति मैत्री भाव रखें। तन, मन और धन से परोपकार के कार्य करें। ब्रह्मचर्य का पालन करें। जीवन में सादगी और पवित्रता के लिए तप-त्याग की आदत डालें। शुभ भावनाओं से चित्त को भावित करें। कदाग्रह का त्याग करें। जगत् के स्वरूप का चिन्तन कर और आत्मस्वरूप का भी चिन्तन करें।

इस प्रकार कर्म-मैल नष्ट हो जाने पर जीव अत्यन्त विशुद्ध हो जाता है अर्थात् परमात्मस्वरूप बन जाता है। तब कर्म-मैल से उत्पन्न होने वाले जन्म, जरा मृत्यु, रोग, शोक आदि कोई उपद्रव नहीं होते हैं, किन्तु जीव सदाशिव निरुपद्रव हो जाता है।

अत एव ऊपर कहे गये गुणों के लिए उद्यम करें।

इस प्रकार भगवानने तीस वर्ष तक उपदेश दिया। जगत् के जीवों की विचित्रता का कारण कर्म बताया। कर्म के सूक्ष्म सिद्धान्तों को समझाया। जीवों

के प्रति मैत्री और भौतिक पदार्थों के प्रति वैराग्य धारण करने को कहा । आत्म शुद्धि के संकल्पपूर्वक अहिंसा, संयम और तपोमय धर्म के पालन का उपदेश दिया । सत्य और न्यायपूर्वक जीवन जीने को कहा ।

पदार्थ के स्वरूप को अनेक दृष्टिकोणों से जानने और मानने रूप अनेकान्त-दर्शन की अनुपम देन दी । परम शान्ति के लिए ममता के त्यागरूप अपरिग्रह का उपदेश दिया ।

भगवान के इस अनुपम उपदेश को पाकर अनेक राजा, महाराजा, राजकुमार, राजकुमारियाँ, श्रेष्ठी, श्रेष्ठिपुत्र आदि प्रभु के संघ में सम्मिलित हुए । इस प्रकार अनेक आत्माएँ संसार के दुःखों से मुक्त हुई और अनेक आत्माएँ मुक्ति के पथ पर अग्रसर हुई ।

आगामी चौबीसी में तीर्थंकर होने वाली आत्माएँ ।

इन मुक्ति के पथ पर अग्रसर होने वाली आत्माओं में नौ आत्माएँ ऐसी है जो आगामी चौबीसी में इसी भरत क्षेत्र में तीर्थंकर होकर मुक्त होंगी । वे ये हैं -

(१) महाराजा श्रेणिक=बिंबिसार (२) प्रभु महावीर के चाचा श्री सुपार्श्व (३) महाराजा कोणिक के पुत्र श्री उदायी राजा (४) पोट्टिल साधु (५) दृढायु श्रावक (६) शंख श्रावक (७) शतक श्रावक (८) सुलसा श्राविका और (९) रेवती श्राविका

निर्वाण-प्राप्ति

इस प्रकार ३० वर्ष गृहवास, १२ वर्ष साधनाकाल और ३० वर्ष केवली अवस्था में रहकर ७२ वर्ष की आयु में प्रभु पावापुरी में विक्रम संवत् पूर्व ४७० वर्ष और ईसवी सन् ५२७ वर्ष पूर्व कार्तिक मास की अमावस्या को निर्वाण-प्राप्त हुए । इसी समय राष्ट्रकार्य से आये हुए नौ लिच्छवी और नौ मल्लकी राजाओं ने प्रभु के निर्वाण होने पर भाव उद्योत के चले जाने से द्रव्य उद्योत करने के लिए दीप प्रगटाए । तभी से दीपावली पर्व प्रवृत्त हुआ ।

भगवान् के समय में अन्य धर्माचार्य
श्री केशी गणधर

उस समय श्री पार्श्वनाथ के सन्तानीय श्रमण भी विद्यमान थे । उनमें मुख्य श्री केशी गणधर थे, जो श्रावस्ती नगरी में श्री इन्द्रभूति गौतम से मिले थे । ज्ञानी होने पर भी इन दोनों ने अपने शिष्यों की शंकाओं के समाधान हेतु तत्त्व-चर्चा की । चर्चा के अन्त में श्री केशी गणधर प्रभु महावीर के संघ में सम्मिलित हो गये थे । श्री केशी गणधर की शिष्यपरंपरा 'उपकेश' गच्छ के नाम से चली ।

इसी समय (१) गौतम बुद्ध (२) पूरण काश्यप (३) गोशालक आदि धर्म के संस्थापक हुए।

गौतम बुद्ध से बौद्ध धर्म प्रवृत्त हुआ। बौद्धों के धर्मशास्त्र त्रिपिटकों में भगवान् महावीर स्वामी का निर्ग्रन्थ ज्ञातपुत्र के नाम से उल्लेख कई जगहों पर है।

गोशालक किसी ब्राह्मण की गोशाला में जन्मे थे अत: गोशालक के नाम से प्रसिद्ध हुए। इन्होंने भगवान् महावीर स्वामी के पास शिष्य की तरह रहकर तेजोलेश्या की विधि सीखी तथा कहीं से अष्टाङ्गनिमित्त सीखकर स्वयं को सर्वज्ञ घोषित कर 'आजीवक' नाम का नया मत चलाया। भगवान् महावीर स्वामी के कैवल्य उत्पत्ति के चौदहवें वर्ष में श्रावस्ती नगरी में गोशालक ने भगवान् पर तेजोलेश्या छोडी परन्तु वह भगवान् की प्रदक्षिणा देकर गोशालक के शरीर में प्रविष्ट हो गई जिससे सातवें दिन उनकी मृत्यु हुई। इस प्रसंग से गोशालक के बहुत से श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के धर्मशासन में शामिल हो गये।

पूरण काश्यप आदि स्वतंत्र धर्मसंस्थापक थे। इनके विषय में ज्यादा जानकारी नहीं मिल रही है।

महाराजा श्रेणिक (बिंबिसार)

इस समय महाराजा श्रेणिक मगध के सम्राट् थे। इन्होंने अपने पुत्र और महामंत्री अभयकुमार के बुद्धिबल से मगध साम्राज्य को सुदृढ किया था। ये प्रभु महावीर स्वामी के परम भक्त थे। इन्होंने अपने अनेक रानियों को एवं मेघकुमार, नन्दिसेन वगैरह राजकुमारों को जैनी दीक्षा दिलाई थी। इसी भक्ति के प्रभाव से ये आगामी चौबीसी के प्रथम तीर्थंकर होने वाले है।

महाराजा कोणिक (अजातशत्रु-अशोकचन्द्र)

अभयकुमार की दीक्षा के बाद राजकुमार कोणिक ने राज्य के लोभ से श्रेणिक को कैद कर दिया और स्वयं मगध के सिंहासन पर बैठ गया। अपनी माता चेल्लणा के उपालम्भ से पिता को मुक्त करने के लिए स्वयं हाथ में कुल्हाडी लेकर जेल की तरफ दौडा। इस तरह कोणिक को अपने समीप आते देखकर श्रेणिक महाराजा ने समझा कि यह मुझे मारने आ रहा है। अत: पुत्र को पिता की हत्या के पाप से बचाने के लिए श्रेणिक महाराज ने स्वयं हीरा चूसकर मृत्यु पा ली।

इस प्रसंग से कोणिक को बडा आघात लगा। राजगृही से उसका मन ऊब गया। राजधानी को यहाँ से उठाकर चम्पा में ले गया। बौद्धभक्त मिटकर वह भगवान् महावीर स्वामी का परम भक्त बन गया। चम्पापुरी में भगवान् महावीर

स्वामी का अद्भुत स्वागत-महोत्सव किया ।

कोणिक के हल्ल और विहल्ल नाम के दूसरे दो भाई थे, जिनको महाराजा श्रेणिक ने सेचनक हाथी और दिव्य कुण्डल दिये थे । उनके पास हाथी और कुण्डल मांगने पर भी जब न पा सका तब महारानी पद्मावती के आग्रह से कोणिक ने बलपूर्वक लेना चाहा ।

हल्ल और विहल्ल डर के मारे हाथी और कुण्डल के साथ भागकर अपने नाना चेडा महाराजा के पास विशाला नगरी में जा पहुँचे । कोणिक की मांग पर भी चेडा महाराजा ने इनको वापिस लौटाने से इन्कार कर दिया । तब कोणिक और चेडा महाराजा के बीच घमासान युद्ध हुआ, जिसमें एक करोड और साठ लाख सैनिक खेत रहे और विशाला नगरी का विनाश हुआ ।

कोणिक बडा तेजस्वी राजा हुआ । मगध साम्राज्य को खूब बढाया । अन्त में राज्य के लोभ से तमिस्त्रा गुफा के द्वार पर ही वीरनिर्वाण से ३१ वें वर्ष में मृत्यु पाया ।

महामन्त्री अभयकुमार

महामन्त्री अभयकुमार श्रेणिक महाराजा के पुत्र थे । महामन्त्री के पद पर रहते हुए इन्होंने मालवपति चण्डप्रद्योतन को पराजित किया था । एवं मगध साम्राज्य को एकच्छत्र बनाया था । अनार्य देश के राजकुमार आर्द्रकुमार को आदीश्वर प्रभु की प्रतिमा भेंट भेज कर जैन बनाया था । बाद में आर्द्रकुमार ने ५०० सुभटों के साथ भारत आकर प्रभु महावीर के पास दीक्षा लेकर मोक्ष पाया । अभयकुमार भी दीक्षा लेकर स्वर्गवासी हुए ।

प्रथम निह्नव जमालि

भगवान् महावीर स्वामी के भानजे और जामाता जमालिकुमार ने ५०० राज-पुत्रों के साथ भगवान् के पास दीक्षा ली थी । बाद में जमालि की पत्नी और भगवान् की पुत्री प्रियदर्शना ने भी १००० राजपुत्रियों के साथ दीक्षा ली थी । शासन-स्थापना के चौदहवें वर्ष में क्रियाकाल और निष्ठाकाल, जो व्यवहार नय से भिन्न है, उसका एकान्त स्वीकार कर प्रथम निह्नव 'बहुरत' हुआ । स्थविरों के समझाने पर भी न समझा और अकेला ही संघ से अलग रहा ।

दूसरा निह्नव तिष्यगुप्त

शासन की स्थापना के १६ वर्ष बाद भगवान् का शिष्य तिष्यगुप्त 'जीवप्रदेशवादी' दूसरा निह्नव हुआ, जिसे बाद में एक श्रावक ने समझा कर सम्मार्ग पर लाया ।

भगवान् के निर्वाण के दिन ही अवन्ती में मालवपति चण्डप्रद्योत की मृत्यु हुई। चण्डप्रद्योत के पालक और गोपाल नाम के दो पुत्र थे। राजगद्दी पर पालक बैठा और गोपाल ने श्री सुधर्मास्वामी के पास दीक्षा ली।

भगवान् की पट्टपरम्परा

भगवान् के नौ गणधर भगवान् की विद्यमानता में ही निर्वाण पा चुके थे। ज्येष्ठ गणधर श्री इन्द्रभूति गौतम को कैवल्य की प्राप्ति प्रभु-निर्वाण के दूसरे दिन कार्तिक शुक्ल प्रथमा को हुई। अत: भगवान् के पट्ट पर पांचवें गणधर श्री सुधर्मास्वामी प्रथम पट्टधर हुए। इस तरह भगवान् का समस्त श्रमण-समुदाय श्री सुधर्मास्वामी के आश्रित हुआ तथा आजकल जो साधुसमुदाय है वह सर्व इन्हीं की परम्परा का कहलाता है।

श्री इन्द्रभूति गौतम

श्री इन्द्रभूति गौतम ५० वर्ष गृहवास में, ३० वर्ष प्रभुसेवा में और १२ वर्ष कैवल्य अवस्था में रहकर ९२ वर्ष की आयु पूर्ण कर वी.नि.सं. १२ में निर्वाण को प्राप्त हुए।

श्री सुधर्मास्वामी (प्रथम पट्टधर)

श्री सुधर्मास्वामी को इसी समय कैवल्य की प्राप्ति हुई। ५० वर्ष गृहवास, ४२ वर्ष छद्मस्थपर्याय और ८ वर्ष कैवल्य अवस्था का पालन कर १०० वर्ष की आयु पूर्ण कर वी.नि.सं. २० में निर्वाण को प्राप्त हुए।

कलिंग-जिन

मगधपति श्री श्रेणिक महाराजा ने कलिंग देश के कुमारगिरि पर जिनमन्दिर का निर्माण करवाया और उसमें श्री ऋषभदेव की सुवर्णमयी प्रतिमा की प्रतिष्ठा श्री सुधर्मास्वामी से करवाई। आगे जाकर यह प्रतिमा कलिंग-जिन के नाम से प्रसिद्ध हुई, साथ ही साथ कुमारगिरि और कुमारीगिरि पर अनेक गुफाएँ खुदवाई जिनमें जैन साधु साध्वी वर्षा-चातुर्मास रहते थे।

श्री जम्बूस्वामी (द्वितीय पट्टधर)

श्री सुधर्मास्वामी के पट्ट पर श्री जम्बूस्वामी विराजमान हुए। ये राजगृह नगर के निवासी थे। पिता का नाम श्री ऋषभ और माता का नाम धारिणी था।

सोलह वर्ष की उम्र मे श्री सुधर्मास्वामी के पास धर्मोपदेश सुनकर इन्होंने सम्यग्दर्शन और ब्रह्मचर्यव्रत स्वीकार किया।

माता-पिता के अत्यन्त आग्रह से आठ कन्याओं के साथ शादी की, तथापि उनसे मोहित न हुए। रात्रि के समय जब ये इन कन्याओं को संसार की असारता समझा रहे थे तब चोरी के लिए आये हुए ४९९ चोर और उनके सरदार प्रभव नाम के क्षत्रियपुत्र चकित रह गये। अन्त में ये सब प्रतिबोधित हुए।

दूसरे दिन सुबह ५०० चोर, ८ पत्नी, १६ उनके माता पिता, २ अपने माता पिता के साथ स्वयं ५२७ वें जम्बूकुमार निन्यानवे करोड सुवर्ण मुद्राओं का त्याग कर दीक्षित हुए। यह प्रसंग वी.नि.सं. १ का है।

१६ वर्ष गृहवास, २० वर्ष छद्मस्थ पर्याय और ४४ वर्ष केवली पर्याय पालकर ८० वर्ष की उम्र में वी.नि.सं. ६४ में अपने पट्ट पर प्रभवस्वामी की स्थापना कर मोक्ष पधारे।

ये जम्बूस्वामी भरत क्षेत्र में इस अवसर्पिणी काल के अन्तिम केवली और सिद्ध हुए।

कच्छ-भद्रेश्वर तीर्थ की स्थापना

इन्हीं के समय में कच्छ देश के भद्रेश्वर तीर्थ की स्थापना हुई। वीर-निर्वाण सं. २३ का शिलालेख है। इस तीर्थ की प्रतिष्ठा श्री सुधर्मास्वामी के शिष्य कपिल केवली ने की थी।

राजा अवन्तीवर्धन की दीक्षा

अवन्तीराज पालक के (१) अवन्तीवर्धन और (२) राष्ट्रवर्धन नामक दो पुत्र थे। पालक की वी.नि. २० में मृत्यु हुई। अवन्तीवर्धन राजगद्दी पर आया। उसने राष्ट्रवर्धन की पत्नी धारिणी को अपने वश में करने के लिए राष्ट्रवर्धन को मरवा डाला। धारिणी परिस्थिति को समझकर कोशाम्बी जा पहुँची और उसने वहाँ जैनी दीक्षा ले ली। इस तरह अवन्तीवर्धन ने भाई की हत्या का पाप किया फिर भी वह धारिणी को पा नहीं सका। अत: वैराग्य पाकर उसने भी जम्बूस्वामी के पास वी.नि. २४ के करीब दीक्षा ली।

सांची का स्तूप

दीक्षा के समय धारिणी गर्भवती थी। उसने एक बालक को जन्म दिया, जिसे कोशाम्बी के नि:संतान राजा अजितसेन ने अपना लिया और उसका नाम मणिप्रभ रखा।

उस तरफ अवन्तीवर्धन की दीक्षा के बाद राष्ट्रवर्धन का पुत्र अवन्तीषेण उज्जयनी की गद्दी पर आया और अजितसेन की मृत्यु के बाद मणिप्रभ कोशाम्बी की राजगद्दी पर आया।

यद्यपि ये दोनों सगे भाई थे तथापि एक दूसरे को पहचानते नहीं थे । अत: कालक्रम से अवन्तीषेण ने सैन्य के साथ कोशाम्बी को घेर लिया । इसी अवसर पर साध्वी धारिणी ने वहाँ आकर उन दोनों भाइयों का परस्पर परिचय कराकर युद्ध अटकाया और स्नेह करवाया । इस प्रकार उज्जैन और कोशांबी के राजवंशों में वर्षो के वैरभाव का अन्त आया ।

इन दोनों राजाओं ने साथ मिलकर कोशाम्बी और उज्जयिनी के बीच वत्सका नदी के किनारे पर्वत की गुफा में श्रीजम्बूस्वामी के शिष्य मुनि धर्मघोष के अनशनपूर्वक स्वर्गगमन का महोत्सव किया ।

मुनि धर्मघोष जहाँ ध्यानस्थ रहे वहीं पर राजा अवन्तीषेण ने एक बडा स्तूप बनवाया जो साँची स्तूप के नाम से आज भी प्रसिद्ध है ।

राजा उदायी

कोणिक की मृत्यु के बाद उसका पुत्र उदायी पाटलिपुत्र को मगध की राजधानी बनाकर राज्य करने लगा । वी.नि.सं. ६० में उसके किसी शत्रु ने उसे जैन धर्म के प्रति दृढ श्रद्धावाला समझकर साधु का वेष लेकर धर्मोपदेश के बहाने महल में जाकर मार डाला ।

राजा उदायी ने पाटलीपुत्र में जिनालय का निर्माण भी कराया था । उसी जिनालय की कुछ मूर्तियाँ आज भी कलकत्ता के म्युजीयम में विद्यमान हैं ।

नंदवंश का उत्थान और पतन

राजा उदायी के नि:संतान मरने पर मन्त्रियों ने दिव्य परीक्षा करके मगध की राजगद्दी पर नन्दिवर्धन नाम के नाई-पुत्र को बैठाया । वी.नि.सं. ६० अर्थात् ई.पूर्व ४६७ में राज्याभिषेक हुआ । राज्याभिषेक के समय उज्जयिनी के राजा पालक ने अपनी पुत्री को इसी प्रथम नन्द के साथ ब्याही । पश्चात् इसी नन्द राजा ने मालव और वत्स देश को अपने आधीन किया ।

इसी प्रथम नन्द राजा ने तक्षशिला और नालन्दा विद्यापीठों की स्थापना की जिनमें पाणिनि, वररुचि, चाणक्य, पतञ्जलि वगैरह विद्वान् तैयार हुए ।

मंत्री वंश

कल्पक नाम के मन्त्री और उसके वंशजों ने मगध साम्राज्य को सुदृढ किया शकटाल और उसका पुत्र श्रीयक नौवें नन्द मन्त्री थे ।

नौ नन्दों का राज्यकाल

नन्दिवर्धन, महानन्दि, महानन्द, सुमाली, बृहस्पति, धननन्द, बृहद्रथ, सुदेव और महापद्म इन नौ नन्दों का राज्यकाल अनुक्रम से ३२, १८, ३७, ७, ३, ४, १०, ६ और ३३ वर्ष का रहा। इस प्रकार वी.नि.सं. ६० से लगाकर २१० तक कुल १५० वर्ष तक नन्द वंश मगध की राजगद्दी पर रहा।

नौवें नन्द को हराकर चाणक्य ने चन्द्रगुप्त मौर्य को पाटलीपुत्र की राजगद्दी पर बैठाया। इस तरह नन्द वंश का अन्त हुआ।

श्री प्रभवस्वामी (तृतीय पट्टधर)

जम्बूस्वामी के पट्ट पर वी.नि.सं. ६४ में श्री प्रभवस्वामी आये। ३० वर्ष की अवस्था में दीक्षा लेकर ४४ वर्ष तक व्रतपर्याय में रहे और ११ वर्ष तक युगप्रधान पद पर रहे।

अपने पट्ट पर स्थापना के लिए संघ में योग्य व्यक्ति न मिलने पर अपने ज्ञान से अन्य दर्शनियों में तलाश करने लगे। उस समय राजगृह नगर में यज्ञ करते हुए शय्यंभव नाम के भट्ट को ज्ञान से देखा। उसी समय दो साधु भगवन्तों को यज्ञशाला में भेजकर "अहो ! कष्ट, अहो ! कष्ट, तत्त्व तो दीखता नहीं है।" इस प्रकार का वचन शय्यंभव को सुनाया।

यह वचन सुनते ही शय्यंभव ने तलवार को म्यान से निकालकर यज्ञ कराने वाले अपने ब्राह्मण गुरु को डराते हुए पूछा- तत्त्व क्या है ? तब ब्राह्मण गुरु ने यज्ञ के खंभे के नीचे रही श्री शांतिनाथ भगवान् की प्रतिमा को बताते हुए कहा- 'यही तत्त्व है'। प्रतिमा के दर्शन मात्र से शय्यंभव को प्रतिबोध हो गया और वे प्रभव-स्वामी के पास जाकर उनके शिष्य बने।

प्रभवस्वामी योग्य शिष्य श्री शय्यंभव को अपने पट्ट पर स्थापित कर ८५ वर्ष की आयु पूर्ण होने पर वी.नि.सं. ७५ में स्वर्गवासी हुए।

श्री रत्नप्रभसूरि

प्रभवस्वामी के समय में अर्थात् वी.नि.सं. ७० के आसपास श्री पार्श्वनाथ भगवान् के छट्ठे पट्ट पर श्री रत्नप्रभसूरि नाम के आचार्य हुए। इन्होंने १,८०,००० क्षत्रियपुत्रों को उपदेश देकर जैन बनाया। वी.नि.सं. ७० माघ शु. ५ को इन्होंने एक ही साथ ओसीया और कोरंट में महावीर स्वामी की प्रतिमाओं की प्रतिष्ठा की।

मनक-पिता श्री शय्यंभव (चतुर्थ पट्टधर)

श्री शय्यंभव ने जब दीक्षा ली तब उनकी पत्नी गर्भवती थी। दीक्षा के बाद पुत्र जन्मा जो मनक के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

आठ वर्ष की उम्र के मनक को भी श्री शय्यंभव ने दीक्षा दी। इसी दीक्षित पुत्र के हितार्थ चंपा नगरी में श्री शय्यंभव ने 'दशवैकालिक सूत्र' की रचना की।

श्री शय्यंभव ने २८ वर्ष की उम्र में दीक्षा ली, ११ वर्ष तक सामान्य व्रत पर्याय का पालन किया और २३ वर्ष तक युगप्रधान पद पर रहकर ६२ वर्ष की आयु पूर्ण कर वी.नि.सं. ९८ में वे स्वर्गवासी हुए। इनके पट्ट पर श्री यशोभद्रसूरि आये।

श्री यशोभद्रसूरि (पांचवें पट्टधर)

श्री यशोभद्र सूरि ने २२ वर्ष की वय में दीक्षा ली। १४ वर्ष तक व्रत-पर्याय में रहे और ५० वर्ष तक युगप्रधान रहे। इस प्रकार ८६ वर्ष का आयुष्य पूर्ण कर वी.नि.सं. १४८ में स्वर्गवासी हुए।

श्री संभूतविजय और श्री भद्रबाहुस्वामी (छट्ठे पट्टधर)

आचार्य श्री यशोभद्रसूरि के पट्टधर दो समर्थ आचार्य हुए। पहले आचार्य श्री संभूतविजय जो २२ वर्ष की वय में दीक्षित हुए। ८ वर्ष तक सामान्य व्रतपर्याय में और ६० वर्ष तक युगप्रधान पद पर रहकर ९० वर्ष की उम्र में वी.नि.सं. २०८ में स्वर्गवासी हुए। इनके मुख्य श्रीस्थूलभद्रस्वामी हुए, जिनका वर्णन आगे करेंगे।

आर्य संभूतविजय के युगप्रधान समय में लेखकों का प्रमाद हो गया है। पं कल्याणविजयजी के मत से किसी लेखक ने "सम्भूय सट्ठी" इस शुद्ध पाठ को बिगाडकर "सम्भूयस्सट्ठ" बना दिया। अतः ६० के ८ बन गये। यह भूल आज कल की नहीं, कोई ८०० वर्षों से भी पहले की है। इसी भूल के परिणामस्वरूप श्री हेमचन्द्राचार्य ने श्रीभद्रबाहुस्वामी का स्वर्गवास वी.नि.सं. १७० लिखा है और इसी भूल के कारण पिछले पट्टावली-लेखकों ने आर्य स्थूलभद्रस्वामीजी का स्वर्गवास वी.नि.सं. २१५ में लिखा है। (पट्टावलीपराग पृ. ५१)

दूसरे आचार्य श्री भद्रबाहुस्वामी हुए, जिन्होंने ४५ वर्ष की वय में दीक्षा ली, १७ वर्ष सामान्य व्रतपर्याय पाला और १४ वर्षो तक युगप्रधान पद पर रहे। जिन-शासन का महान् उपकारकर वी.नि.सं. २२२ में कुमारगिरि पर १५ दिन का अनशन कर स्वर्गवासी हुए।

इन्होंने 'महाप्राण' नाम के ध्यान को सिद्ध किया था। चतुर्विध संघ की रक्षा के लिए 'उवसग्गहरं' सूत्र को रचा। अनेक आगमों पर संक्षिप्त व्याख्या रूप निर्युक्ति शास्त्रों की रचना की। श्री स्थूलभद्रस्वामी इन्हीं के पास चौदह पूर्व पढे। इन्हीं की प्रमुखता में पहली आगमवाचना पाटलीपुत्र में हुई थी।

तीसरे निह्नव अव्यक्तवादी

इन्हीं के काल में श्री आषाढाचार्य के शिष्य वी.नि.सं. २१४ में अव्यक्तवादी तीसरे निह्नव हुए, जिनको राजगृही नगरी में मौर्यवंशी बलभद्र राजा ने पुनः प्रतिबोधित किया।

आचार्य श्री संभूतविजय और आचार्य श्री भद्रबाहुस्वामी के पट्ट पर श्री स्थूल-भद्रस्वामी हुए।

कामविजेता श्री स्थूलभद्रस्वामी (सातवें पट्टधर)

पाटलिपुत्र में शकटाल मन्त्री के पुत्र श्रीस्थूलभद्र बारह वर्ष तक राजवेश्या 'कोशा' के घर रहे। इनकी ३० वर्ष की उम्र थी तब वररुचि ब्राह्मण के प्रपंच से शकटाल मन्त्री की मृत्यु होने पर राजा नन्द ने इन्हें बुलाकर मन्त्री पद स्वीकार करने को कहा। किन्तु इन्होंने इस तरह अपने पिता की अकाल मृत्यु से विरक्त होकर दीक्षा ले ली।

पश्चात् श्रीसंभूतविजय के पास विधिपूर्वक व्रतों को स्वीकारा। कुछ समय के बाद गुरु के आदेश से कोशा के घर वर्षा-चातुर्मास रहे। वहाँ धर्मोपदेश देकर कोशा को श्राविका बनाया।

इसीसे ये कामविजेता कहलाये। ब्रह्मचर्य पालन के आदर्श रूप में इनका नाम ८४ चौबीसी तक अमर रहेगा।

इनके छोटे भाई श्रीयक मन्त्री ने और यक्षा वगैरह सात बहिनों ने भी दीक्षा ली थी।

श्री स्थूलभद्रस्वामी २४ वर्ष तक व्रत-पर्याय में और ४५ वर्ष तक युगप्रधान पद पर रहकर ९९ वर्ष की वय में वी. नि. सं. २६७ में स्वर्गवासी हुए।

छः श्रुतकेवली

श्रीप्रभवस्वामी, श्रीशय्यंभवस्वामी, श्रीयशोभद्रसूरि, श्रीसंभूतविजय, श्रीभद्रबाहुस्वामी और श्रीस्थूलभद्रस्वामी, ये छः चौदहपूर्वधर होने से श्रुतकेवली कहलाये ।

आर्य महागिरि और आर्य सुहस्ती (आठवें पट्टधर)

श्री स्थूलभद्रस्वामीजी के पट्ट पर आर्य महागिरिजी और आर्य सुहस्ती हुए । ये दोनों गुरु भाई थे ।

आर्य महागिरि

आर्य महागिरि ३० वर्ष की उम्र में दीक्षा लेकर ४० वर्ष तक व्रतपर्याय में रहे । निरपवाद चारित्र रूप **जिनकल्प** श्री जम्बूस्वामी के निर्वाण के साथ विच्छिन्न हो गया था फिर भी आप उसका अभ्यास करते थे । सारांश- आप उत्तम चारित्री थे । ३० वर्ष तक युगप्रधान पद पर रहकर पूरे १०० वर्ष की आयु पालकर वीर निर्वाण संवत् २९७ में स्वर्गवासी हुए ।

आर्य सुहस्ती

आर्य सुहस्ती ने ३१ वर्ष की उम्र में दीक्षा ली । २४ वर्ष तक व्रतपर्याय पाली और ४६ वर्ष तक युगप्रधान पद पर रहे १०० वर्ष की आयु पूर्ण कर वी.नि.सं. ३४३ में स्वर्गवासी हुए । यहाँ तक के आचार्य निर्ग्रन्थगण के कहलाये ।

चौथा निह्नव समुच्छेदवादी

इन्हीं के काल में वी.नि. के ३२० वर्ष के बाद मिथिलापुरी में आर्य महागिरि के शिष्य कौडिन्य ठहरे हुए थे । कौडिन्य का शिष्य अश्वमित्र था । आत्मप्रवाद पूर्व के नैपुणिक वस्तु में छिन्नछेद नय की वक्तव्यता पढते पढते वह मिथ्यात्व के उदय से एकान्त समुच्छेदवादी चौथा निह्नव हो गया । पश्चात् काम्पिल्यपुर में खण्डरक्ष नाम के श्रावक ने उससे एकान्त समुच्छेदवाद का त्याग करवाया ।

महाराजा संप्रति

आर्य सुहस्ती ने दुष्काल के समय कौशांबी नगरी में साधुओं से भिक्षा की याचना करने वाले रंक को दीक्षा दी । वह रंक मर कर सम्राट् अशोक के पुत्र कुण्हाल की पत्नी की कुक्षी में हाथी के स्वप्नपूर्वक उत्पन्न हुआ । जन्म समय इसका नाम संप्रति रखा गया । शैशव काल में ही दस महीने के इस बालक को अशोक सम्राट् ने अपने विशाल साम्राज्य का उत्तराधिकारी घोषित किया । वी.नि.सं. के २९२ में राजगद्दी पर आया ।

संप्रति ने पाटलीपुत्र में आपने अनेक शत्रु है ऐसा जानकर पाटलीपुत्र का त्याग किया और अवन्ती में आकर सुख से राज करने लगा ।

यह भी अशोक की तरह बडा पराक्रमी था । नेपाल, तिब्बट, खोटान और ग्रीस देश के भूभाग को अपने अधीन किया था ।

संप्रति के सिक्के जो मिल रहे हैं, उनके एक तरफ सम्प्रति और दूसरी तरफ 卐 स्वस्तिक, रत्नत्रयी और मोक्ष के प्रतीक संप्रति के जैन होने की साक्षी दे रहे हैं ।

चीन की दीवाल

महाराजा संप्रति के तिब्बत, खोटान आदि प्रदेशों की विजय से डरकर चीनी सम्राट् सीह्युवांग ने वी.नि. ३१२ ई.स. २१४ में इस दीवाल को खिंचवाया । यह दीवार विश्व का एक आश्चर्य है ।

पाँचवाँ निह्नव द्विक्रियावादी

वी.नि.सं. ३२८ में उल्लुका नदी के पश्चिम तट पर स्थित नगर में आर्य महागिरि के शिष्य आचार्य धनगुप्त ठहरे हुए थे । आचार्य धनगुप्त के शिष्य आचार्य गंग पूर्वी तट पर स्थित नगर ठहरे हुए थे ।

शरत्काल में आचार्य गंग अपने गुरु को वंदन करने जा रहे थे । वे सिर में गंजे थे । नदी उतरते सिर धूप से जलता था, तब नीचे पाँवों में शीतलता का अनुभव होता था ।

गंग सोचने लगे- सूत्रों में कहा है कि एक समय में एक क्रिया का ज्ञान होता है शीत स्पर्श अथवा उष्ण स्पर्श का, पर मुझे तो दो क्रियाओं का अनुभव हो रहा है । अतः एक समय में एक नहीं, दो क्रियाओं का वेदन होता है ।

इस विचार को उन्होंने जब गुरु के सामने रखा तब गुरु ने कहा- एक समय में दो क्रियाओं का वेदन नहीं होता है, तथा पि समय और मन अतीव सूक्ष्म होने के कारण समय भिन्न-भिन्न होते हुए भी स्थूल बुद्धि से उनकी भिन्नता मालूम नहीं होता इत्यादि समझाने पर भी मिथ्यात्व के उदय से न समझा तब श्रमणसंघ से अलग कर दिया गया।

पश्चात् नाग जाति के एक देव 'नागमणि' के चैत्य के समीप गंग जब अपने विचार सभा के सामने रख रहे थे तब देवने कहा- अरे दुष्ट ! असत्य उपदेश क्यों दे रहा है ! इसी स्थान पर भगवान् वर्धमान स्वामी ने कहा था- एक समय में एक ही का अनुभव होता है । क्या तू उनसे भी बढकर हो गया ? इत्यादि समझाने पर उसने गुरु के पास जाकर क्षमा मांगना स्वीकार किया ।

जैनधर्म की प्रभावना

अवन्ती में एक बार रथयात्रा में पधारे हुए आर्य सुहस्ती के दर्शन मात्र से संप्रति महाराजा को जातिस्मरण ज्ञान हो गया । पूर्वजन्म के उपकारी आचार्य भगवंत की कृपा से सुसमृद्ध विशाल साम्राज्य की प्राप्ति, मनुष्य जन्म की दुर्लभता आदि का ज्ञान होने पर १२५००० (सवा लाख) मन्दिर, १२५००००० (सवा करोड) नूतन प्रतिमाएँ निर्मित करवाई । ३६००० (छत्तीस हजार) मन्दिरों का जीर्णोद्धार करवाया, पिचानवें हजार धातु की प्रतिमाओं एवं ७०० (सात सौ) दानशालाओं से भारत भूमि को भूषित किया । इनके नियमानुसार एक दिन भी ऐसा व्यतीत न हुआ कि जिस दिन नये मन्दिर का शिलान्यास हुआ न हो । राजस्थान, मालवा, गुजरात और काठियावाड संप्रतिकाल के अनेक मन्दिर और मूर्तियों के आज भी दर्शन होत हैं ।

महाराजा संप्रति ने अवन्ती में जैन श्रमणों के सम्मेलन का आयोजन कर अपने राज्य में जैन धर्म की प्रभावना करवाई । अनार्य देशों में भी जैन धर्म के आचारों का प्रचार करवाया । आज भी अमेरिका, मंगोलिया और आष्ट्रिया के बुडापेस्ट की खुदाई में जो जिन-प्रतिमाएँ एवं उनके अवयव मिले हैं वे सभी संप्रतिकालीन हैं । यह राजा वी.नि. ३४५ में स्वर्गवासी हुआ ।

अवन्ती पार्श्वनाथ तीर्थ

इन्हीं आर्य सुहस्ती के पास भद्रा सेठानी के पुत्र अवन्तीसुकुमाल ने ३२ पत्निथों का त्यागकर दीक्षा ली थी । दीक्षा समय ही गुरु-आज्ञा से श्मशान में जाकर अनशन स्वीकारा । रात के समय वहाँ रहे मुनि के शरीर को एक शृगाली और उसके बच्चों ने खा लिया । मुनि की आत्मा समतापूर्वक उपसर्ग सहकर देवलोक में उत्पन्न हुई ।

इस वृतान्त से भद्रा माता और उनकी पुत्रवधुओं को वैराग्य उत्पन्न हुआ । एक गर्भवती पुत्रवधू को छोडकर भद्रा माता ने इकत्तीस पुत्रवधूओं के साथ दीक्षा ली ।

बाद में अवन्तीसुकुमाल की उस गर्भवती पत्नी ने महाकाल नाम के पुत्र को जन्म दिया । इसी महाकाल ने अपने पिताकी स्मृति में श्रीअवन्ती पार्श्वनाथ का गगनचुंबी मन्दिर बनवाया, जिसका दूसरा नाम महाकाल का मन्दिर था । यही मन्दिर राजा पुष्यमित्र के समय में महादेव का मन्दिर बन गया था । बाद में महाराजा विक्रमादित्य के समय में आचार्य श्री सिद्धसेन दिवाकर सूरिजी ने इस मन्दिर में श्री पार्श्वनाथ प्रभु की प्रतिमा प्रकट की । आज यह स्थान अवन्ती

पार्श्वनाथ के नाम से प्रसिद्ध है ।

प्रसंग से राजवंशों का भी उल्लेख करेंगे । नौवें नंद के राज्यकाल में सिकन्दर ने वी.नि. २०१, ई.पू. ३२५ में सिंधु नदी को पार कर राजा पुरु के साथ भयंकर युद्ध किया । इतिहासकारों के मत से वी.नि. २०४ ई.पू. ३२२ में पाटलीपुत्र राजगद्दी पर चन्द्रगुप्त मौर्य का राज्याभिषेक हुआ । मौर्य और मौर्य संवत् का प्रारम्भ यही से हुआ ।

मौर्य वंश और चन्द्रगुप्त मौर्य

मौर्य वंश का आदि पुरुष चन्द्रगुप्त मौर्य राज्य के प्रारंभ काल में बौद्ध धर्म का अनुयायी रहा । बाद में चाणक्य मंत्री ने उसे जैन धर्म का दृढ अनुरागी बनाया ।

सम्राट चन्द्रगुप्त मौर्य अत्यन्त पराक्रमी था । उसने सिकन्दर के सेनापति और बाद में यूनान के राजा सेल्युकस को सन्धि के लिए बाधित किया । चन्द्रगुप्त की सहायता से ही सेल्युकस ने ऐन्टिगोन्स को हराया था । चन्द्रगुप्त ने अपने साम्राज्य का विस्तार किया । वी.नि. २२८ में चन्द्रगुप्त स्वर्ग सिधार गया । यूनानी राजदूत मेगस्थनीज इसी चन्द्रगुप्त की राजसभा में उपस्थित रहता था ।

मन्त्री चाणक्य

चाणक्य जन्म से ब्राह्मण होने पर भी जैन धर्म का उपासक था । एक बार नौवें नन्द से अपमानित होने पर इसने नन्द वंश का निकन्दन करने की प्रतिज्ञा की । बाद में नन्द राजा पर विजय पायी और मगध की राजगद्दी पर चन्द्रगुप्त का राज्याभिषेक किया । स्वयं मन्त्री बनकर मौर्य साम्राज्य का विस्तार किया । यह बडा नीति-निपुण था । इसके ग्रन्थ चाणक्यनीति, कौटिल्य अर्थशास्त्र वगैरह आज भी इतने ही प्रसिद्ध है । वह अन्त में अनशन कर स्वर्गवासी हुआ ।

बिन्दुसार

चन्द्रगुप्त का पुत्र बिन्दुसार राजगद्दी पर आया । यह दृढ जैनधर्मी था । इसका राज्यकाल वी.नि. २२८ से वी.नि. २५६ तक २८ वर्ष का रहा ।

सम्राट अशोक

बिन्दुसार के बाद उसका पुत्र अशोक राजगद्दी पर आया । राज्य के आरम्भ-काल में यह जैन मतावलंबी था । राज्यप्राप्ति के चार साल बाद यह बौद्ध धर्म का अनुयायी बना और 'प्रियदर्शन' इस दूसरे नाम से प्रसिद्ध हुआ ।

अपने अतुल पराक्रम से कलिंग, महाराष्ट्र, सौराष्ट्र आदि अनेक देशों को अपने अधीन किया। ताशकन्द और समरकन्द तक साम्राज्य की सीमा बढाई। कलिंगविजय से अशोक ने अपना निजी संवत्सर चलाया। अशोक ने बौद्ध धर्म का प्रचार देश विदेशों में- लंका, चीन और ब्रह्मा वगैरह देशों में किया। उज्जिंत, विन्ध्य आदि पर्वतों में गुफाएँ खुदवाई एवं अशोक स्तम्भ लगवाये।

अशोक के अनेक पुत्रों में कुणाल राज्य के योग्य था। किन्तु किसी सौतेली माँके षड्यन्त्र से वह अन्धा हो गया। इसी कारण से अशोक ने उस रानी को और अनेक अपराधी पुत्रों को मरवा डाला। बाद में इसी कुणाल के पुत्र संप्रति को अपना उत्तराधिकारी बनाकर वी.नि. २९२ में ६२ वर्ष की वय में अशोक परलोकगामी हुआ। संप्रति का वर्णन हम आगे पढ चुके हैं।

पुण्यरथ और वृद्धरथ

जब संप्रति स्वेच्छा से पाटलीपुत्र का त्यागकर अवन्ती जाकर राज्य करने लगा तब अशोक का पुत्र और संप्रति का चाचा दशरथ मगध साम्राज्य के प्रतिनिधि के रूप में पाटलीपुत्र की राजगद्दी पर आया। संप्रति की मृत्यु के बाद यह सम्राट पद पर आया।

दशरथ की मृत्यु के बाद, क्रमशः संप्रति का पुत्र शालीन देववर्मा, शतधनुष और बृहद्रथ मगध की राजगद्दी पर आये। इन सब का राज्यकाल अतीव अल्प रहा।

बृहद्रथ मौर्य वंश का अन्तिम राजा था। इसके सेनापति पुष्यमित्र ने इसे मारकर मगध की राजगद्दी पर अधिकार जमा लिया।

पुष्यमित्र

पुष्यमित्र कट्टर धर्मांध था। इसने बौद्ध और जैनों के मन्दिरों तथा मूर्तियों का विनाश किया। साधु के मस्तक के एक सौ दीनार देकर अनेक बौद्ध और जैन साधुओं का कतल करवाया। इस समय कलिंग के राजा खारवेल ने, जो परम जैन भक्त था, पुष्यमित्र को हराकर कडी शिक्षा दी। राजा खारवेल के विषय में हम आगे पढेंगे।

योगसूत्रकार मुनि पतञ्जलि इसी समय में हुए।

भिक्षुराज खारवेल के पूर्वज

प्रभु महावीर स्वामी के समय में कोणिक और चेडा महाराजा के बीच जो भयंकर युद्ध हुआ था उसके परिणामस्वरूप विशाला नगरी का विध्वंस हुआ और

चेडा महाराजा अनशन कर स्वर्गवासी हुए ।

चेडा महाराजा का पुत्र शोभनराज भागकर अपने श्वसुर कलिंगराज सुलोचन की शरण में गया । सुलोचन के सन्तान नहीं थे । अतः अपने जामाता शोभन-राज को कनकपुर राजधानी में कलिंग की राजगद्दी पर स्थापित कर वह वी.नि.सं. १८ में परलोक का अतिथि हुआ ।

शोभनराज दृढ जैनधर्मी था । इसी की पांचवी पीढी में चंडराज नाम का राजा वी.नि. १४९ में कलिंग की राजगद्दी पर आया । चंडराज के राज्यकाल में पाटलीपुत्र के राजा आठवें नन्द ने कलिंग पर आक्रमण किया, श्रेणिक महाराजा द्वारा निर्मापित कुमारगिरि के जिनमन्दिर को तोडा और सुवर्णमयी ऋषभदेव की प्रतिमा को लेकर पाटलीपुत्र लौट गया ।

बाद में कलिंग की राजगद्दी पर शोभनराज का आठवाँ वंशज खेमराज नाम का राजा आया । इसी के राज्यकाल में सम्राट अशोक ने कलिंग पर आक्रमण किया और इसे परास्त किया ।

खेमराज का पुत्र वृद्धराज कलिंग देश का स्वामी हुआ । यह दृढ जैन धर्मी था ।

भिक्षुराज खारवेल

वृद्धराज का पुत्र भिक्षुराज वी.नि. ३६२ में कलिंग की राजगद्दी पर आया । यह बडा पराक्रमी था । इसने वी.नि. ३७० में मगध के शासक पुष्यमित्र को संधि के लिए बाधित किया था तथा वी.नि. ३७४ में दूसरी बार हराकर आठवें नन्द द्वारा कुमारगिरि से पाटलीपुत्र लाई हुई सुवर्णमयी ऋषभदेव प्रभु की प्रतिमा को पुनः अपनी राजधानी में लौटाई और कुमारगिरि तीर्थ पर श्रेणिक महाराजा द्वारा बनाये गये मन्दिर का पुनः उद्धार कर इस प्रतिमा को आर्य सुहस्ती के शिष्य श्री सुस्थित सुप्रतिबुद्ध द्वारा प्रतिष्ठित करवाई । इन्हीं आचार्य श्री श्यामाचार्य की प्रमुखता में इस राजा ने श्रमण-सम्मेलन बुलाया, जिसका वर्णन आगे करेंगे ।

इसी भिक्षुराज खारवेल का एक शिलालेख ई.पू. दूसरी सदी का ओरिस्सा के खंडगिरि पर हाथी गुफा में आज भी विद्यमान है जो ऐतिहासिक घटनाओं का और जीवनचरित्र के वर्णन का सबसे प्राचीन लेख है ।

शिलालेख इस प्रकार है :-

इस राजा का प्रताप राज्यकाल के दूसरे वर्ष में ही मही नदी से लगाकर कृष्णा नदी तक फैल गया । बाद में तो इसकी विजयी पताका भारतवर्ष में उत्तरापथ से लगाकर पांड्य देश तक लहराई । खारवेल ने मगध पर चढाई कर

भ.श्री ऋषभदेव की प्रतिमा जो 'कलिंग जिन' के नाम से प्रसिद्ध है उसे पुनः कलिंग लाकर कुमारगिरि पर मन्दिर बंधवाकर प्रतिष्ठित कराई । कलिंग की रानी ने जैन साधुओं के विहार उपाश्रय बंधवाये । श्रमणों को वस्त्र दान दिया । राजा ने आगमों का संग्रह करवाया इत्यादि ।

महाराजा खारवेल के राज्यकाल में जैन धर्म की प्रबलता थी । आगन्तुक अन्य धर्मी भी जैन धर्म के प्रभाव में आ जाता था इसलिए तत्कालीन वैदिक आचार्यों ने अपने अनुयायियों के लिए कलिंग वगैरह में जाने पर प्रतिबन्ध लगा दिया था । वह इस तरह-

"सिन्धु-सौवीर-सौराष्ट्रांस्तथा प्रत्यन्तवासिनः ।
अङ्ग-बङ्ग-कलिङ्गांश्च गत्वा संस्कारमर्हति ॥ १ ॥"

यह महाराजा इतिहास में तीन नामों से प्रसिद्ध है- (१) निर्ग्रन्थ भिक्षुओं का अर्थात् जैन साधुओं का भक्त होने से भिक्षुराज, (२) महामेघ नाम के हाथी को सवारी करने से महामेघवाहन और (३) सागरतट पर राजधानी होने से खारवेल-राज ।

यह महाप्रतापी भिक्षुराज जैन धर्म की प्रभावना के और अनेक कार्य कर वी.नि. ३८२ में स्वर्गवासी हुआ । इसके पुत्र और पौत्र वल्कराज और विदुहराज क्रम से राजगद्दी पर आये जो जैन धर्म के दृढ अनुरागी थे ।

आचार्य श्री सुस्थितसूरि और श्री सुप्रतिबुद्धसूरि (नौवें पट्टधर) एवं कोटिक गण की उत्पत्ति

आर्य सुहस्ती के पट्ट पर आचार्य श्री सुस्थितसूरि और आचार्य श्री सुप्रतिबुद्ध सूरि आये । क्रमशः कोटिक और काकान्दिक इनके विशेषण थे । इन्हीं से कोटिक गण निकला ।

दूसरी आगमवाचना

कुमारगिरि पर कलिंगराज खारवेल ने कलिंग-जिन की पुनः प्रतिष्ठा इन्हीं आचार्यों से करवाई । इन्हीं आचार्यों की प्रमुखता में श्रमण-सम्मेलन बुलाया गया था, जो दूसरी आगमवाचना के नाम से प्रसिद्ध है, जिसमें आर्य महागिरि के शिष्य आर्य बलिस्सह ने विद्याप्रवाद-पूर्व से 'अंगविद्या' शास्त्र की, आर्य

बलिस्सह के शिष्य श्री स्वाति ने जिनप्रवचन के संग्रहरूप 'तत्त्वार्थ-सूत्र' की और श्री स्वाति के शिष्य श्री श्यामाचार्य (प्रथम कालकाचार्य) ने, जिनका युग-प्रधान काल वी.नि. ३४३ से ३८४ है, जिनप्रवचन सुलभ बोध हेतु 'प्रज्ञापना' सूत्र' की रचना की। ये दोनों आचार्य वी.नि. ३७९ में स्वर्गवासी हुए।

आर्य सुहस्ती के पश्चात् पट्टावली में गुरुपरम्परा नहीं, किंतु वाचक-स्थविर परम्परा है। यह भी दो प्रकार की है- एक माथुरी वाचना के अनुसार और दूसरी वल्लभी वाचना के अनुसार माथुरी वाचनानुगत पट्टावली में युगप्रधानों के नाम मात्र दिये है उनका समयक्रम नहीं लिखा, तब वल्लभी वाचनानुगत पट्टावली में नामों के साथ समय भी दिया गया है। इन दोनों में क्रमभेद है। इसका मूल कारण दुष्काल आदि की परिस्थितियों को लेकर श्रमणसंघ के दो विभाग हैं। दक्षिण, मध्यभारत और पश्चिम भारत में पहुँचे हुए श्रमण उत्तरभारतीय श्रमणगणों से बहुत दूर विचर रहे थे। अतः उन्होंने उत्तरीय संघस्थविर के स्थान पर अपना नया संघस्थविर नियुक्त कर संघस्थविर-शासनपद्धति को निभाया। फिर दोनों संघों का एक दूसरे से संपर्क हुआ तब संघस्थविर शासनपद्धति एक हो गई। इन दोनों स्थविरावलियों को हम पुस्तक के अन्त में पढेंगे।

यहाँ हम गुरुपरम्परा के साथ युगप्रधान आचार्यों का एवं उस समय के अन्य प्रचारक आचार्यों का भी विवरण देखेंगे।

आचार्य श्री इन्द्रदिन्नसूरि और दिन्नसूरि
(१० वें और ११ वें पट्टधर)

आचार्य श्री सुस्थितसूरि और सुप्रतिबुद्धसूरि के पट्ट पर दशवें आचार्य श्री इन्द्रदिन्नसूरि हुए और ग्यारहवें आचार्य श्री दिन्नसूरि हुए। इनका स्वर्गवास-समय क्रम वी.नि. ४३० और ५१० है।

आचार्य श्री प्रियग्रन्थसूरी

ये इन्द्रदिन्नसूरि के छोटे गुरू-भाइ थे। ये बडे प्रभावक थे। इन्होने अजमेर के पास हर्षपुर में हजारों ब्राह्मणों को अपनी प्रभावक शक्त्ति से प्रभावित कर जैनधर्म का अनुयायी बनाया।

आचार्य श्री सिंहसूरीजी (बारहवें पट्टधर)

आर्य दिन्नसूरि के शिष्य श्री सिंहगिरिजी जातिस्मरण ज्ञान वाले थे। इनके पट्टधर श्री

वज्रस्वामी युगप्रधान हुए जिनका वर्णन हम आगे देखेंगे। आचार्य श्री सिंहगिरिजी वी. नि. ५७५ में स्वर्गवासी हुए।

ईसु का आगमन

इसी समय ईसु भारत में आये और जैन धर्म का अध्ययन कर उसकी विशेषताऐं अपने नये मत में अपनायीं ऐसा विद्वानो का मत है।

इस बीच अन्य प्रभावक आचार्य हुए जिनका संक्षिप्त वर्णन निम्न प्रकार है-

आचार्य श्री शाण्डिल्य

माथुरी वाचनानुगत श्री श्यामाचार्य के बाद उनके ही शिष्य शाण्डिल्य युगप्रधान पद पर आये, जिन्होंने जीतकल्प की रचना की जो वर्तमान में अप्राप्य है।

प्राप्त जीतकल्प के रचयिता श्री जिनभद्रगणी क्षमाश्रमण हैं। ये शाण्डिल्याचार्य स्कन्दिलाचार्य के नाम से भी प्रसिद्ध थे।

आचार्य श्री रेवतीमित्र

वल्लभी वाचनानुगत श्री श्यामाचार्य (प्रथम कालकाचार्य) के बाद रेवतीमित्र वी. नि. ३८४ से ४२० तक युगप्रधान पद पर रहे।

आचार्य श्री समुद्र और मंगु

आचार्य श्री समुद्र और आचार्य श्री मंगु दोनों वाचनाओ के अनुसार युगप्रधान हुए। इनका काल क्रमश: वी. नि. ४२० से ४२९ और ४२९ से ४४६ है।

आचार्य श्री समुद्र आर्य शाण्डिल्य के शिष्य थे। ये महान् भूगोलवेत्ता और त्यागी-तपस्वी हुए।

आचार्य श्री मंगु आर्य समुद्र के शिष्य थे। ये बडे ज्ञानी और प्रभावक थे। भक्तों की भक्त्ति से रंजित होकर मथुरा में ही रहने लगे। अपने इस रसलाम्पट्य का आलोचन किये बिना ही कालधर्म पाकर मथुरा नगर के बाहर यक्ष रूप में उत्पन्न हुए। एक दिन इनके शिष्य जब स्थण्डिल-भूमि से लौट रहे थे तब इन्होंने यक्ष रूप से अपनी जीभ को बाहर लम्बा कर शिष्यों की रसगृद्धि से रक्षा की।

आर्य नन्दिल और नागहस्ती

माथुरी वाचना के अनुसार आर्य मंगु के बाद उनके छोटे गुरू-भाइ आर्य नन्दिल युगप्रधान पद पर आये, और आर्य नन्दिल के बाद श्री नागहस्ती युगप्रधान पद पर आये।

आर्य धर्म

वल्लभी वाचना के अनुसार आर्य मंगु के बाद आर्य धर्म वी. नि. ४४६ से ४६९ तक युगप्रधान पद पर रहे। इनके प्रति श्री सिद्धसेन दिवाकर पूज्य भाव रखते थे। हो सकता है

कि उनसे पढे हों।

श्री कालकाचार्य (दूसरे)

श्री कालकाचार्य धारावास नगर के राजकुमार थे। निर्ग्रन्थ आचार्य श्री गुणाकर का उपदेश सुनकर इन्होंने अपनी बहन सरस्वती के साथ दीक्षा ली।

उधर वी.नि. ४०५ में पुष्यमित्र के पतन के बाद अवन्ती की राजगद्दी पर दर्पण नाम का राजा आया। उसके बाद उसका पुत्र गर्दभिल्ल राजा हुआ। वह बडा दूराचारी था। अपनी सगी बहन अडोलिया के सौन्दर्य से मुग्ध होकर उसके साथ पापक्रीडा में मग्न रहने लगा।

श्री कालकाचार्य एक बार उज्जयिनी के बाहर उद्यान में पधारे हुए थे। साध्वी सरस्वती भी वहाँ अपने भाई आचार्य को वंदन करने आई।

इसी समय राजा गर्दभिल्ल भी घुडसवारी के निमित्त वहाँ जा पहुँचा। साध्वी सरस्वती के मनोहर रूप से मुग्ध होकर उसे बलात् उठाकर अपने अन्तः पुर में रख लिया।

श्री कालकाचार्य के समझाने पर भी दुर्भागी गर्दभिल्ल सरस्वती को लौटाने के लिए राजी न हुआ, तब आचार्य ने सिन्धु नदी के तटप्रदेश के शासक सामन्त नाम के शकराज को अपनी विद्याओं से प्रभावित कर प्रचंड सैन्य के साथ अवन्ती के समीप लाकर रख दिया। गर्दभिल्ल भी अपने सैन्य के साथ नगर से बाहर निकला। दोनों सैन्यों में भीषण युद्ध हुआ। गर्दभिल्ल मारा गया और नरक का अतिथि हुआ। सरस्वती को आलोचनादि प्रायश्चित से शुद्ध कर पुनः दीक्षा दी।

दक्षिण में प्रतिष्ठानपुर के राजा सातवाहन अपरनाम शालिवाहन की प्रार्थना से इन्हीं कालकाचार्य से भाद्रपद शुक्ल पंचमी के बदले चतुर्थी के दिन संवत्सरी पर्व का प्रवर्तन हुआ।

इस तरह वी.नि. ४५३ में शकवंश उज्जयिनी की राजगद्दी पर आया। चार वर्ष बाद वी.नि. ४५७ में शकराज का पतन हुआ।

शकराज के पतन के बाद वी.नि. ४५७ में महाराजा विक्रमादित्य, जो बलमित्र के नाम से भी प्रसिद्ध है, अवन्ती की राजगद्दी पर आये।

आचार्य श्री वृद्धवादी

ये आर्य शाण्डिल्य के शिष्य थे। वृद्धावस्था में इन्होंने दीक्षा ली थी, फिर भी अध्ययन में अतीव उत्साह रखते थे। फलस्वरूप समर्थ वादी हुए। विहारक्रम से भरुच पधार रहे थे। प्रथम नगर के बाहर और पश्चात् भरुच की राजसभा में सिद्धसेन नाम के प्रकाण्ड विद्वान् ब्राह्मण को वाद में परास्त कर अपना शिष्य बनाया।

आचार्य श्री सिद्धसेन दिवाकर और महाराजा विक्रमादित्य

यही सिद्धसेन आचार्य श्री वृद्धवादी से दीक्षित हुए और इनका नाम कुमुदचन्द्र रखा गया। प्राकृत सूत्रों को संस्कृत में परिवर्तित करने हेतु नमस्कार महामन्त्र से 'नमोर्हत्' की रचना की। इस प्रवृत्ति के लिए आचार्य श्री ने इन्हें प्रायश्चित में अवधूत के वेष से किसी महान् राजा को प्रतिबोधित करने का फरमाया।

एक बार ये अवधूत के रूप में उज्जयिनी नगरी के महाकाल के मन्दिर में शिव-लिंग की तरफ पाँव कर सो गये। पुजारी के कहने पर जब न उठे तब वह पुजारी ज्यों-ज्यों पाँव खींचने लगा त्यों-त्यों पाँव लंबे होने लगे। पुजारी भयभीत होकर राजा के पास पहुँचा और बीती बात कही। राजा ने प्रहार की आज्ञा दी। अवधूत पर प्रहार पडने लगे, किन्तु प्रहार की कडी वेदना अन्तःपुर में रानियों को होने लगी। यह जानकर राजा स्वयं मन्दिर में आया और अवधूत के पास चमत्कार की मांग की।

तब आचार्य श्री सिद्धसेन ने कल्याणमन्दिर स्तोत्र की रचना की और शिव-लिंग में ज्वाला प्रकट कर श्री अवन्ती पार्श्वनाथ की प्रतिमा प्रकट की। इस तरह विक्रम राजा को प्रतिबोध देकर जैन धर्म का दृढ अनुरागी बनाया। इन्हीं के उपदेश से राजा विक्रमादित्य ने पृथ्वी को ऋणमुक्त किया और वी.नि. ४७० में युधिष्ठिर संवत्सर के स्थान पर अपने नाम का संवत्सर चलाया जो विक्रमसंवत्सर कहलाता है। राजा विक्रमादित्य ने इन्हीं आचार्य के सान्निध्य में श्री सिद्धगिरि का पैदल यात्रासंघ निकाला था जिसमें लगभग सत्तर लाख जैन कुटुंब सम्मिलित थे।

इनके पास सुवर्णसिद्धि और सर्षप मे से सैनिक बनाने की विद्या थी। ये विद्वान वादी और कवि थे। सम्मति-तर्क, न्यायावतार और द्वात्रिंशद् द्वार्त्रिंशिका इनकी मुख्य कृतियाँ हैं।

वी.नि. ४७७ अर्थात् वि.स. ७ में वायड नगर में श्री महावीर स्वामी के मन्दिर का जीर्णोद्धार होने के पश्चात् पुनः प्रतिष्ठा आचार्य श्री जीवदेवसूरि के द्वारा विक्रमादित्य के मन्त्री लिम्बा ने करवाई थी और सुवर्ण के ध्वजादण्ड चढाए थे।

श्री खपुटाचार्य

आर्य खपुटाचार्य का समय वी.नि. ४५० से ५०० करीब का है। ये महान् प्रभावक विद्यासिद्ध हुए। इन्होंने भरुच, गुडशस्त्र और पाटलीपुत्र में बौद्धों और ब्राह्मणों

को हराकर जैन धर्म की महती प्रभावना की। आचार्य श्री महेन्द्रसिंह इनके शिष्य थे। श्री पादलिप्तसूरिजी इनसे पढे थे। इस समय पाटलीपुत्र में दाहड अपरनाम देवभूति राजा था, जो आर्य खपुट के शिष्य आचार्य श्री महेन्द्रसिंह से प्रभावित था।

आचार्य श्री पादलिप्तसूरि

श्री पादलिप्तसूरि इसी समय के महान् आचार्य हुए। ये आकाशगामिनी के शक्ति के स्वामी थे। इनके मल-मूत्र औषध रुप थे। इन्होंने नागार्जुन संन्यासी को जैन श्रावक बनाया था। इन्हीं के नामसे पालीताणा नगर बसा है। ज्योतिष्करण्डक की टीका, प्रतिष्ठिाकल्प, तरंगवती आदि अनेक ग्रन्थों के आप रचयिता है। इनके समय में पाटलीपुत्र की राजगद्दी पर मुरुंड नाम का राजा था, जो इनसे प्रभावित था।

आचार्य श्री भद्रगुप्तसूरि

आर्य धर्म के पश्चात् आचार्य भद्रगुप्तसूरि युगप्रधान पद पर आये। इनका युग-प्रधानकाल वी.नि. ४९३ से ५३२ है। इनका जन्म वी.नि. ४२८ में हुआ और दीक्षा वी.नि. ४४९ में हुई। इनसे आर्य वज्रस्वामी दश पूर्व पढे थे। आर्यरक्षित स्वामी ने इनको अन्तिम आराधना करवाई थी।

आचार्य श्री गुप्तसूरि और छठा निह्नव त्रैराशिक रोहगुप्त

आचार्य श्री गुप्तसूरि ने अन्तरञ्जिका नगरी में परिव्राजक के साथ वाद में विजयी होने हेतु रोहगुप्त को अनेक विद्याएँ और रजोहरण दिया था। रोहगुप्त को विजय प्राप्त हुई थी, किन्तु विजय के अभिमान में चकचूर हो कर राजसभा में जाकर त्रिराशि- निरूपण की गल्ती स्वीकार नहीं करने पर आचार्य श्री ने इसे बाद में परास्त किया और अन्त में रोहगुप्त छठा त्रैराशिक निह्नव हुआ। ये आचार्य युगप्रधान पद पर वी.नि. ५३२ से ५४७ तक रहे।

आचार्य श्री समितसूरि

बारहवें पट्टधर श्री सिंहसूरि के शिष्य श्री समितसूरि हुए। ये युगप्रधान वज्र-स्वामी के संसारी पक्ष में मामा थे। वी.नि. ५८४ में आभीर देश के अचलपुर नगर के पास कन्ना-बेन्ना नदियों के बीच ब्रह्मद्वीप में इन्होंने ५०० तापसों को प्रतिबोध देकर जैनी दीक्षा दी थी, जिनसे ब्रह्मद्वीपिका शाखा निकली।

आचार्य श्री वज्रस्वामी (तेरहवें पट्टधर)

बारहवें पट्टधर आचार्य श्री सिंहसूरि के मुख्य चार शिष्य थे (१) आर्य समित,

जिनका वर्णन हम पहले कर चुके हैं; (२) आर्य धनगिरि, ये आचार्य श्री वज्रस्वामी के पिता थे, (३) आर्य वज्रस्वामी और (४) आर्य अर्हद्दत्त।

इनमें से आर्य वज्रस्वामी पट्टधर पद पर और युगप्रधान पद पर आये। इनके पिता श्री धनगिरि जन्म से ही वैरागी थे, किन्तु माता-पिता के आग्रह से शादी की। श्रीवज्रस्वामी माता के गर्भ में आये तब श्री धनगिरि ने दीक्षा ले ली। श्री वज्र-स्वामी जन्म से ही जातिस्मरण ज्ञानवाले थे। अतः माता को अपने प्रति उद्विग्न कर छः मास की उम्र में ही आर्य धनगिरि की भिक्षाझोली में पहुँच गये।

साध्वीजी के उपाश्रय में तीन वर्ष की उम्र में ग्यारह अंग सीख लिये। माता की ममता इस बालक के प्रति फिर जगी। अतः वह राजसभा में मिठाई और खिलौनों का ढेर बताकर बालक को लुभाने लगी। दूसरी तरफ आचार्य श्री ने रजोहरण और मुहपत्ति दिखाई। बालक ने दौडकर वह ले ली। इस प्रसंग से माता ने भी दीक्षा ले ली।

पूर्व जन्म के मित्र देवों ने आकाशगामिनी और वैक्रिय लब्धि इन्हें दी थी, जिसके प्रभाव से ये दुष्काल में संघ को सुकाल वाले क्षेत्र में ले गये थे। दक्षिण के बौद्ध राज्य में श्री जिनपूजा निमित्त पुष्प लाकर राजा और प्रजा को जैन बनाया था एवं साध्वी के मुख से प्रशंसा सुनकर आपके प्रति अनुरागिनी बनी हुई श्रेष्ठिकन्या रुक्मिणी को आपने दीक्षा दी थी।

आचार्य श्री भद्रगुप्त से आपने दश पूर्व पढे थे जिसके प्रभाव से अद्भुत उपदेशशक्तिरूप क्षीराश्रव-लब्धि के आप स्वामी थे। आचार्य रक्षितसूरि ने आपसे ही साढे नौ पूर्व पढे थे। इनसे वज्री शाखा निकली। आजकल के श्रमण प्रायः इसी शाखा के हैं। अन्त में अनशन कर आप स्वर्ग सिधार गये।

जहाँ आपने अनशन किया उस पर्वत को इन्द्र ने आकर रथ सहित प्रदक्षिणा देकर आपको वंदन किया। संभवतः मैसूर के समीप का श्रवण-बेलगोला ही इन्द्रगिरि और रथावर्त गिरि के नाम से प्रसिद्ध हुआ हो।

आर्य वज्रस्वामी ने शत्रुञ्जय तीर्थ के नये अधिष्ठायक कपर्दी यक्ष की स्थापना की थी। वी.नि. ५७० में शेठ जावड शाह ने शत्रुञ्जय पर नये प्रासाद की प्रतिष्ठा आपके करकमलों से करवाई थी।

माथुरी वाचना में आचार्य श्रीगुप्त की युगप्रधानों में गणना नहीं है । वल्लभी पट्टावली के अनुसार आर्य वज्रस्वामी का युगप्रधान काल वी.नि. ५४७ से ५८३ है तथापि कुछ विद्वान् वी.नि. ५३४ से ५७० मानते हैं, इसका कारण पश्चात् के १३ साल आर्यरक्षित म.सा. का युगप्रधान काल है । अत: ५८४ में सातवें निह्नव अबद्धिक गोष्ठामाहिल का काल आवश्यकवृत्ति के अनुसार संगत होता है ।

आर्यरक्षितसूरि और तीसरी आगमवाचना

आर्यरक्षितसूरि जन्म से ब्राह्मण थे । चौदह विद्याओं को पढकर जब ये घर आये तब माता ने आत्महितकर दृष्टिवाद पढने के लिए कहा । माता की आज्ञा से दृष्टिवाद पढने के लिए ये आचार्य श्री तोषलिपुत्र के पास दीक्षित हुए । आर्य वज्रस्वामी से साँढे नौ पूर्व पढे । पश्चात् माता, पिता, भाई वगैरह पूरे परिवार को दीक्षा दी ।

आर्यरक्षितसूरि का जन्म वी.नि. ५०८, दीक्षा वी.नि. ५३०, सामान्य व्रतपर्याय ४० वर्ष तथा वी.नि. ५७० से ५८३ तक युगप्रधान पद पर अवस्थान रहा । आपने काल की विषमता, शरीरबल की हानि, मतिमन्दता वगैरह कारणों को ध्यान में रखकर आगमों को द्रव्यानुयोग, गणितानुयोग, चरणकरणानुयोग और कथानुयोग में विभक्त कर दिया, जो तीसरी आगमवाचना के रूप में प्रसिद्ध है ।

आचार्य श्री दुर्बलिका पुष्पमित्र

आर्यरक्षितसूरि के शिष्य आचार्य दुर्बलिका पुष्पमित्र युगप्रधान पद पर वी.नि. ५८३ से वी.नि. ६०२/६०३ तक रहे । ये बडे बुद्धिमान् थे । इनका ज्ञान साढे नौ पूर्व का था । इन्हीं के काल में वी.नि. ५८४ में अबद्धिक गोष्ठामाहिल दशपुर नगर में सप्तम निह्नव हुआ ।

सप्तम निह्नव गोष्ठामाहिल

एक बार दशपुर नगर में आचार्य श्री दुर्बलिका पुष्पमित्र आदि ठहरे हुए थे । विन्ध्य नाम के साधु कर्म का स्वरूप वर्णन कर रहे थे, तब गोष्ठामाहिल कर्म-बन्ध की व्याख्या में अपनी अरुचि प्रकट करते बोले- जैसे कंचुकीपुरुष का कंचुक स्पृष्ट होकर ही रहता है बद्ध होकर नहीं, इसी प्रकार कर्म भी जीव से बद्ध न होकर स्पृष्ट होकर ही रहता है । विन्ध्य ने कहा- गुरु ने ऐसा नहीं सिखाया है ।

इसी तरह एक दिन प्रत्याख्यान का वर्णन चलता था, जैसे ''प्राणातिपात का त्याग करता हूँ, यावज्जीवनपर्यन्त'' तब गोष्ठामाहिल ने कहा ''काल-परिमाण की सीमा बांधना अच्छा नहीं है । कालपरिमाण वाले पच्चक्खान दूषित हैं, क्योंकि उनमें आशंसा दोष होता है ।''

इस पर विन्ध्य ने कहा- तुम्हारा कथन यथार्थ नहीं है । तब गोष्ठामाहिल आर्य दुर्बलिका पुष्पमित्र के पास जाकर अभिनिवेशपूर्वक कहने लगा कि स्वर्गस्थ गुरु भगवंत ने अन्यथा पढाया है और तुम अन्यथा व्याख्या कर रहे हो । इस पर आचार्य और स्थविरों ने उसे युक्तिपूर्वक समझाया, फिर भी आचार्य का कथन उसने मान्य नहीं किया । इस पर अन्यगच्छीय स्थविरों से पूछा गया तो उन्होंने आर्य पुष्पमित्र का समर्थन किया । इतने पर भी गोष्ठामाहिल ने दुराग्रह नहीं छोडा । तब संघ इकट्ठा किया गया । संघ के कायोत्सर्ग से आकृष्ट देवता ने सीमन्धरस्वामी के पास जाकर पूछा और वापिस आकर कहा- संघ सम्यग्वादी है और गोष्ठामाहिल मिथ्यावादी । यह सप्तम निह्नव है । इस प्रकार संघ ने उन्हे बहिष्कृत कर दिया ।

शालिवाहनशकसंवत्सर और कनिष्कसंवत्सर का प्रवर्तन

आचार्य कालकसूरि द्वारा लाये गये शकराजा का चार वर्ष के अल्प काल में ही जब अवन्ती की राजगद्दी से पतन हुआ, तब वी.नि. ४५७ के बाद उसके वंशजों का गुजरात-सौराष्ट्र में उदय हुआ । शालिवाहन नाम के राजा ने मालवा पर आक्रमण कर गर्दभिल्ल के वंशजों को हरा दिया, और वी.नि. ६०५, विक्रम सं. १३५ और ई.सं. ७८ में स्वयं मालवा की राजगद्दी पर आरूढ हुआ । तभी से अपने नाम का संवत्सर चलाया जो शक संवत्सर के नाम से भी प्रसिद्ध हुआ और यह आजकल हमारा राष्ट्रिय संवत्सर भी है ।

इसी समय कुशानवंशी राजा कनिष्क मथुरा की राजगद्दी पर आया और इसने भी अपने नाम संवत्सर चलाया ।

आर्य वज्रसेनसूरि, श्री चन्द्रसूरि और श्री समन्तभद्रसूरि

(चौदहवें पन्द्रहवें और सोलहवें पट्टधर)

आचार्य श्री वज्रस्वामी के प्रथम पट्टधर श्री वज्रसेनसूरि, पट्टक्रम से चौदहवें

हैं। वज्रसेनसूरि दुर्भिक्ष के समय वज्रस्वामी के वचन से सोपारक नगर गए थे। वहां जिनदत्त सेठ, ईश्वरी सेठानी और नागेन्द्र, चन्द्र, निर्वृति, विद्याधर चार पुत्रों को दीक्षा दी थी। इन चारों के नामों से चार कुलों की उत्पत्ति हुई। आचार्य श्री वज्र-सेनसूरि दीर्घजीवी थे। जन्म वी.नि. ४७७ में, दीक्षा ४८६ में और युगप्रधान पद पर वी.नि. ६०२ से ६०५ तक रहे।

आचार्य श्री वज्रसेन के पट्टधर आचार्य श्री चन्द्रसूरि हुए। इन्हीं से चान्द्र कुल की उत्पत्ति हुई। आजकल के साधु बहुधा इसी कुल के हैं।

आचार्य श्री चन्द्रसूरि के पट्टधर आचार्य श्री समन्तभद्र हुए, जो वादी और विद्वान् थे। नगर बाहर उद्यानादि में रहने की रुचि रखते थे। अतः 'वनवासी' कहलाते थे। इनका समय वी.नि. ६५० के करीब है।

यहाँ एक बात खास ध्यान में रखने की है कि सोलहवें पट्टधर आचार्य श्री चन्द्रसूरि से लगाकर चौतीसवें पट्टधर आचार्य श्री विमलचन्द्रसूरि तक का श्रृंखला-बद्ध कालनिर्णय नहीं हो रहा है। अतः प्राप्त सामग्री के आधार पर अनुमान से ही विद्वानों ने जो संभावनाएँ की है, तदनुसार हम आगे बढेंगे।

आठवां निह्नव शिवभूति (दिगम्बरमतप्रवर्तक)

वी.नि. ६०९ वर्ष के बाद मथुरा के समीप रथवीर नगर के बाहर उद्यान में आचार्य कृष्ण ठहरे हुए थे। उनका 'सहस्रमल्ल शिवभूति' नामक एक शिष्य था, जो गृहस्थावस्था में वहाँ के राजा का कृपापात्र था। अतः वहाँ के राजा ने उसे कम्बलरत्न का दान दिया। आर्य कृष्ण को जब इस बात का पता लगा तो उन्होंने उपालम्भ के साथ कहा- साधुओं को ऐसा बहुमूल्य वस्त्र लेना वर्जित है। इतना कहकर आचार्य ने उस कम्बल के टुकडे कर साधुओं को आसन के लिए दे दिये। शिवभूति को गुस्सा तो आया, पर कुछ बोला नहीं।

एक दिन जिनकल्प का वर्णन चल रहा था तब शिवभूति ने पूछा- इस समय उपधि अधिक क्यों रखी जाती है ? जिनकल्प क्यों नहीं किया जाता ? गुरु ने कहा- जिनकल्प करना आज शक्य नहीं है, वह विच्छिन्न हो गया है। शिवभूति ने कहा- विच्छेद कैसे हो सकता है ? मैं करता हूँ। इस विषय पर आचार्य और स्थविरों ने उसे खूब समझाया, फिर भी वह कर्मोदय के वश होकर वस्त्रों का त्याग कर चला गया। इसी से दिगम्बर मत की उत्पत्ति हुई। शिवभूति के शिष्य प्रशिष्य

की परम्परा में कौण्डकुन्द और वीर हुए।

यहाँ एक उल्लेखनीय हकीकत है कि मथुरा के स्तूप में से एक जैन श्रमण की मूर्ति मिली है, जिस पर "कण्ह" नाम खुदा हुआ मिलता है। यह मूर्ति इन्हीं कृष्ण आचार्य की हो तो आश्चर्य नहीं, क्योंकि यह मूर्ति अर्धनग्न होते हुए भी उसके कटिभाग में प्राचीन निर्ग्रन्थ श्रमणों द्वारा नग्नता ढँकने के निमित्त रखे जाते 'अग्रावतार' नामक वस्त्रखण्ड की निशानी देखी जाती है। यह अग्रावतार आर्य-रक्षित तक चला। बाद में श्रमण कमर में चोलपट्टक बांधने लगे। यह प्रासङ्गिक बात हुई।

वल्लभी वाचनानुगत स्थविरों का कालक्रम यद्यपि आर्य वज्र वी.नि. ५४७ से ५७३, आर्यरक्षित ५८३ से ५९६, आर्य दुर्बलिका पुष्पमित्र ५९६ से ६१६ और आर्य-वज्रसेन ६१६ से ६१९ है तथापि ऊपर के लेख में कुछ परिवर्तन किया है, वह पदार्थसंगति के लिए अनिवार्य हो गया है।

आर्य नन्दिल

माथुरी वाचनानुगत स्थविरक्रम से आर्य मंगु के बाद आर्य नन्दिल हुए। कब से कब तक ये युगप्रधान पद पर रहे, उसका वर्णन नहीं मिल रहा है। फिर भी वीरनिर्वाण से ४४९ वर्ष बाद का काल ही संभव है। ये साढे नौ पूर्वों के ज्ञाता थे। इन्हीं के उपदेश से कोई वैरोट्या नाम की श्रेष्ठी की पुत्रवधू दीक्षा लेकर धरणेन्द्र की देवी हुई और प्रभु पार्श्वनाथ के भक्तों को सहाय करने लगी। आप ही ने 'नमिऊण जिण पास' इत्यादि मन्त्रगर्भित वैरोट्या देवी का स्तवन बनाया, जो विष उतारने और उपद्रवों की शान्ति के लिए उत्तम मन्त्र के रूप में प्रसिद्ध है।

आर्य नागहस्ती

वल्लभी वाचनानुगत स्थविरक्रम से आर्य वज्रसेन के बाद वी.नि. ६१९ से ६८८ तक आर्य नागहस्ती युगप्रधान रहे। माथुरी वाचनानुसार आर्य नन्दिल के बाद इनका क्रम है।

आचार्य श्री वृद्धदेवसूरि (सत्तरहवें पट्टधर)

आचार्य श्री समन्तभद्रसूरि 'वनवासी' के पट्ट पर आचार्य श्री वृद्धदेवसूरि आये। इनके उपदेश से संभवतः शक सं. १२५ अर्थात् वी.नि. ७३० के आसपास कोरण्ट नगर में नाहड राजा के मन्त्री द्वारा निर्मापित श्री महावीर स्वामी के मन्दिर की प्रतिष्ठा हुई।

आचार्य श्री जगज्जगसूरि

ये अपने समय के प्रभावक आचार्य हुए। इनके उपदेश से राजा नाहड ने साचौर में महावीर स्वामी का मन्दिर बनवाया था, जिसमें प्राचीन पित्तलमयी प्रतिमा की प्रतिष्ठा वी.नि. ७३० में हुई।

आर्य रेवतिमित्र

आर्य नागहस्ती के बाद आर्य रेवतिमित्र वी.नि. ६८८ से ७४७ तक युगप्रधान पद पर रहे। माथुरी वाचना के अनुसार इनका नाम रेवतिनक्षत्र है।

आचार्य श्री प्रद्योतनसूरि (अठारहवें पट्टधर)

आचार्य श्री वृद्धदेवसूरि के पट्ट पर आचार्य श्री प्रद्योतनसूरि आये। वी.नि. ७४० वि.सं. २७० और शक स. १३५ में राजा नाहड के समय में जालोर के सुवर्णगिरि किले के नवनिर्मित यक्षवसति नामक मन्दिर में आपने महावीर स्वामी की प्रतिष्ठा की थी।

इसी समय का एक शिलालेख जूनागढ में मिला है जो गिरनार तीर्थ के श्रीनेमिनाथ भगवान् के मन्दिर के जीर्णोद्धार अथवा किसी नई प्रतिष्ठा का है। इस लेख से मालूम होता है कि उस समय सौराष्ट्र के शक वंशीय राजा महाराजा रुद्रदाम (शक सं ७२ ई.स. १५०) और उसके पुत्र (१) दामजद (शक सं. ९० ई.स. १६८) तथा (२) रुद्रसिंह (शक सं. १०२ से १२२ ई.स. १८० से २००) जैन थे। इनमें रुद्रदाम 'आप्राणोछ्वासात् पुरुषवधनिवृत्तिकृतप्रतिज्ञेन' अर्थात् जीवन पर्यन्त पुरुषवध के त्याग की प्रतिज्ञा वाले थे, ऐसा उल्लेख है।

आचार्य श्री कालकसूरि (तीसरे)

देवर्द्धिक्षमाश्रमण की गुर्वावली के २५ वें पुरुष आचार्य श्री कालकसूरि हुए। इनका समय वी.नि. ७२० है।

आचार्य श्री मानदेवसूरि (उन्नीसवें पट्टधर)

आचार्य श्री प्रद्योतनसूरि के पट्ट पर श्री मानदेवसूरि आये। आचार्यपद प्रदान के समय इनके कन्धों पर सरस्वती और लक्ष्मी को साक्षात् देखकर श्री प्रद्योतनसूरि के चित्त में उदासीनता छा गई। अपने आचार्य के अशुभ की शंका के निवारण हेतु आपने जीवन पर्यन्त घी, दूध आदि सभी विकृतियों का और भक्त के घर की भिक्षा का त्याग किया।

आपके इस महान् त्याग और तप से पद्मा, जया, विजया और अपराजिता नाम की देवियों द्वारा आपको उपासित देखकर एक बार तक्षशिला से आये हुए वीरचंद नाम के महाजन को आपके प्रति शंका हुई, तब देवियों ने उसे शिक्षा दी।

'लघु शान्तिस्तव' की रचना कर आपने तक्षशिला में प्रवृत्त महामारी के उपद्रव को शान्त किया था। तथा व्यन्तर के उपद्रव का निवारण करने के लिए 'तिजयपहुत्त' स्तोत्र बनाया।

पंजाब और सिन्ध में अनेक स्थानों के राजपूतों को उपदेश देकर जैनधर्मी बनाया था।

ब्रह्मद्वीपिक आर्य सिंह

आर्य रेवतीमित्र के बाद ब्रह्मद्वीपिका शाखा के आर्य सिंह युगप्रधान पद पर वी.नि. ७४७ से ८२५ तक रहे।

आचार्य श्री नागार्जुन और श्री स्कन्दिलाचार्य तथा चौथी आगमवाचना

आर्य सिंह के अनुगामी आचार्य श्री नार्गाजुन युगप्रधान पद पर वी.नि. ८२५ से ९०३ तक रहे। वल्लभी में वी.नि. ८३० को चौथी आगमवाचना के आप प्रमुख थे।

माथुरी वाचना के अनुसार आर्य सिंह के बाद आर्य स्कन्दिल युगप्रधान हुए। इनकी प्रमुखता में उत्तर मथुरा में चौथी आगमवाचना हुई, तब इनके शिष्य आचार्य श्री गन्धहस्ती भी साथ थे। यह वाचना माथुरी वाचना कहलाई।

आचार्य श्री गन्धहस्ती

आचार्य श्री गन्धहस्ती तीन पूर्वो के ज्ञाता थे। आर्य स्कन्दिल की प्रेरणा से आपने ग्यारह अंगों का विवरण तथा तत्त्वार्थसूत्र पर ८०,००० श्लोकप्रमाण भाष्य रचा था।

माथुरी वाचना के अनुसार आर्य स्कन्दिल के बाद आर्य हिमवन्त युगप्रधान हुए, जिनकी रची हिमवन्त-स्थविरावली बहुत प्राचीन है। आर्य हिमवन्त के अनुगामी युगप्रधान आचार्य श्री नागार्जुन का उल्लेख है जो वल्लभीवाचना के अनुसार भी वी.नि. ८२५ से ९०३ तक युगप्रधान हैं।

आचार्य श्री भूतदिन्न और पांचवीं आगमवाचना

आचार्य श्री नागार्जुन के शिष्य आचार्य श्री भूतदिन्न का दोनों वाचनाओं में उल्लेख मिलता है । इनका युगप्रधानकाल वी.नि. ९०३ से ९८२ है । वी.नि. ९८० में आपने, आचार्य श्री कालकसूरि ने और देवर्धिगणि क्षमाश्रमण ने मिलकर सभी आगमों को पुन: संकलित किया जो पांचवीं वाचना कहलाई ।

आचार्य श्री कालकसूरि (चौथे)

आचार्य श्री कालकसूरि का युगप्रधान काल वी.नि. ९८२ से ९९३ है । वल्लभी के राजा ध्रुवसेन के पुत्रमरण के शोक निवारण हेतु सभासमक्ष आपने कल्पसूत्र पढकर सुनाया था । तब से कल्पसूत्र सभा के समक्ष प्रतिवर्ष पढा जाता है । वल्लभी की पांचवी आगमवाचना वी.नि. ९८० में हुई, उसमें आप भी थे । तुरमणि के शासक दत्त को सत्य का उपदेश देने के लिए भी आप प्रसिद्ध हैं ।

आचार्य श्री देवर्धिगणि क्षमाश्रमण

चौदहवें पट्टधर श्री वज्रसेनसूरि के शिष्य आर्यरथ की परम्परा में आर्यसिंह के शिष्य आर्यधर्म हुए । आर्यधर्म के शिष्य आर्यशाण्डिल्य हुए, और आर्य शाण्डिल्य के देवर्धिगणि क्षमाश्रमण हुए । इनका दूसरा नाम आचार्य श्री देववाचक है । ये पूर्व जन्म में इन्द्र के सेनापति हरिणैगमेसी देव थे, जिन्होंने इन्द्र की आज्ञा से देवानन्दा की कुक्षि से त्रिशला माता की कुक्षि में श्री महावीरस्वामी को रक्खा था । वल्लभी में वी.नि. ९८० की आगमवाचना के आप अगुआ थे । नन्दिसूत्र की रचना आपने ही की । वी.नि. १००० में शत्रुञ्जय पर अनशन कर स्वर्गवासी हुए ।

श्री सत्यमित्र अन्तिम (पूर्वधर)

श्री सत्यमित्र प्रभु-शासन के अन्तिम पूर्वधर हुए । इनका युगप्रधान काल वी.नि. ९९३ से १००० है ।

आचार्य श्री मानतुङ्गसूरि (बीसवें पट्टधर)

आचार्य श्री मानदेवसूरि के पट्टधर आचार्य श्री मानतुङ्गसूरि हुए । 'भक्तामर स्तोत्र' की रचना कर थाणेश्वर के राजा श्रीहर्ष को आपने प्रभावित किया था । 'नमिऊण' स्तव भी आपकी रचना है । धारानगरी (उज्जयिनी) के राजा भोज की

राजसभा के आप चमकते सितारे रहे। कादंबरी और हर्षचरित के रचयिता कवि बाण तथा सूर्यशतक के रचयिता कवि मयूर आपके समकालीन हुए।

गोविन्द वाचक

गोविन्द वाचक पूर्व में कट्टर बौद्ध और प्रकाण्ड वादी थे। जैनाचार्यों के साथ बाद में अनेक बार हार जाने से इनके मन में एक विचार सूझा- 'एक बार जैन आगमों को अच्छी तरह पढ लूँ, ताकि बाद में इनका खंडन कर सकूँ।' इस विचार से कपटपूर्वक जैनी दीक्षा ली। आरंभ में आचाराङ्ग के प्रथम अध्ययन के वनस्पति उद्देशक का अध्ययन करते-करते इनका मिथ्यात्व नष्ट हो गया और ये सच्चे जैन साधु बने। क्रमशः श्रुत के पारगामी हुए और आपने वाचक पद पाया। आपकी विद्यमानता वी.स. ९०० के बाद भी थी।

कलचुरी अपरनाम चेदी संवत्सरप्रवर्तन

जुन्नेर (महाराष्ट्र) के पास त्रिकुट नगर के राजा ईश्वरदत्त ने सौराष्ट्र पर विजय पायी, और वी.सं. ७७५ वि.सं. ३०५ (२६-८-२४९) से त्रैकुठक संवत्सर चलाया जो कलचुरी और चेदी भी कहलाता है।

गुप्तसाम्राज्य की स्थापना और संवत्सरप्रवर्तन

गुप्त वंश विक्रम की चौथी सदी के अन्तिम चरण में मध्य भारत की सत्ता पर आया। चन्द्रगुप्त प्रथम ने वी.सं. ८४६ वि.सं. ३७६ कार्तिक शुक्ल प्रतिपदा से गुप्त संवत्सर चलाया।

वल्लभी संवत्सरप्रवर्तन

गुप्त संवत्सर के साथ वल्लभी संवत्सर का प्रवर्तन वल्लभी नगर की स्थापना के अवसर पर राजा आद्य शिलादित्य ने किया। अतः गुप्तसंवत्सर का दूसरा नाम वल्लभीसंवत्सर है।

गुप्तवंश के राजा

चन्द्रगुप्त प्रथम का राज्यकाल १४ वर्ष का रहा। उसके पुत्र समुद्रगुप्त ने पूरे भारत पर विजय पायी। समुद्रगुप्त के बाद उसका बडा लडका रामगुप्त राजगद्दी पर आया। म्लेच्छों ने उसे कैद कर दिया। वह किसी तरह मुक्त हुआ। पश्चात्

उसके भाई चन्द्रगुप्त द्वितीय ने उसे मरवा डाला और स्वयं राजा बन बैठा । रामगुप्त की पत्नी ध्रुवस्वामिनी के साथ शादी भी की ।

अल्लाहबाद के कीर्तिस्तम्भ में वर्णन है कि- इसने गोरखपुर, काशी, बंगाल, बिहार, राजस्थान, मालवा और दक्षिण में कांची तक अपनी आज्ञा प्रवर्तायी थी । कुमारगुप्त के पश्चात् स्कन्दगुप्त राजगद्दी पर आया ।

भारत में हूणों का आगमन, सत्ता और पतन

हूणों का एक काफिला फारस से तिब्बत होकर भारत में आया । उसने सम्राट् कुमारगुप्त के समय में ई.स. ४०० के आसपास कन्धार को लूटा । दूसरी बार ई.स. ४५० के करीब हूण भारत में आये, परन्तु ई.स. ४५५ में सम्राट् स्कन्दगुप्त ने इनका सामना किया और आगे बढने से रोका ।

हूण सम्राट् तोरमाण और मिहिरकुल

अन्त में हूण **सम्राट् तोरमाण** ने कन्धार, सौराष्ट्र, गुजरात, मत्स्य, मध्यप्रदेश, एरन, बुन्देलखण्ड और मालवा को जीत कर भारत में हूण साम्राज्य की स्थापना ई.स. ५०० में की । यह ई.स. ५०२ में परलोक का अतिथि हुआ । उसका पुत्र **मिहिरकुल** गद्दी पर आया । यह बडा बहादुर था । ई.स. ५१७ में इसने काश्मीर को जीतकर सिन्ध और सिन्ध के आसपास के प्रदेश को भी जीत लिया था । अन्त में गुप्त सम्राट् बलादित्य, मालवराज यशोवर्मा, वल्लभीपति ध्रुवसेन, कन्नोजराज आदित्यवर्मा, थानेश्वरनरेश नरवर्मा वगैरह ने मिलकर मिहिरकुल का सामना किया । ई.स. ५२८ में मन्दसौर के पास इसे बुरी तरह से पराजित होना पडा और भारत छोड कर भाग जाने को विवश होना पडा । मन्दसौर के विजयस्तम्भों में उक्त वृत्तान्त का उल्लेख आज भी विद्यमान है । ई.स. ५४० में मिहिरकुल की मृत्यु हुई । इस तरह हूणों का पतन हुआ । ई.स. ६४८ में हूणों की रही-सही सत्ता का सदा के लिए नाश थानेश्वर के राजा हर्षवर्धन ने किया ।

आचार्य श्री हारिल अपर नाम हरिगुप्त

आचार्य श्री हारिल अपर नाम हरिगुप्त गृहस्थ अवस्था में अहिछत्रा नगरी के गुप्तवंशी राजा थे । वैराग्य पाकर जैनी दीक्षा ली थी । हूण-सम्राट तोरमाण और मिहिरकुल आपको गुरु मानते थे । आप युगप्रधान पद पर वी.नि.स. १००० से १०५५ तक रहे ।

आचार्य श्री देवगुप्त

आचार्य श्री देवगुप्त पूर्व पर्याय से मालवा के गुप्तवंशी राजा थे। युद्ध में राजा राज्यवर्धन से पराजित होने पर वैराग्यवासित हो कर आपने आचार्य श्री हरिगुप्त के पास दीक्षा ली थी। राजवंशों पर आपका पूर्ण प्रभाव था। आप महाकवि थे। 'त्रिपुरुषचरित' आपकी रचना है।

आचार्य श्री जिनभद्रक्षमाश्रमण

आचार्य श्री जिनभद्रक्षमाश्रमण का युगप्रधान काल वी.नि. १०५५ से १११५ है। आप समर्थ विद्वान् और व्याख्याता हुए। आपकी कृतियाँ-विशेषावश्यक भाष्य, सभाष्य जीतकल्प, विशेषणवती, बृहत्संग्रहणी, बृहत् क्षेत्रसमास, ध्यानशतक, निशीथभाष्य हैं। आपके शिष्य श्री शीलाङ्काचार्य ने आचारांग और सूयगडांग की टीकाऐं लिखी।

आचार्य श्री स्वाति

आचार्य श्री स्वाति का युगप्रधानकाल वी.नि. १११५ से ११९० का है। इनके लिए विद्वान् अलग-अलग संभावनाएँ करते हैं। किसीके मत से तत्त्वार्थसूत्र, प्रशमरति, पूजाप्रकरण, श्रावकप्रज्ञप्ति आदि ग्रन्थों के रचयिता हैं। दूसरों के मत से पूर्णिमा से चतुर्दशी की पक्खी-व्यवस्था करने वाले ये हैं। इसी तरह पश्चाद्वर्ती युगप्रधानों का संवाद नहीं मिलने से ग्रन्थकारों ने संभावनाओं का आश्रय लिया है। अतः युगप्रधानों के इतिहास को यहीं समाप्त कर अब आगे पट्टधर और प्रभावक आचार्यो के बारे में पढेंगे।

आचार्य श्री मल्लवादी

आचार्य श्री मल्लवादी बडे प्रभावक आचार्य हुए। ये प्रकाण्ड विद्वान् थे। सरस्वती का अनेक बार आपको साक्षात्कार हुआ था। भरुच की राजसभा में वी.नि. ८८४ में बौद्धों को आपने हराया था। 'नयचक्र' ग्रन्थ आपकी विशिष्ट रचना है। वल्लभी का राजा आद्य **शिलादित्य**, जो बौद्ध था, उसको आपने जैन बनाया था। इसी शिलादित्य ने शत्रुञ्जय तीर्थ का उद्धार कराया था।

वल्लभी का नाश

पाली (राजस्थान) का गरीब वणिक् काकु वल्लभी में आकर सिद्धरस और चिंत्रावेली के प्रभाव से अतीव समृद्ध हो गया । एक दिन राजा ने काकु की पुत्री की रत्नजडित कंधी बलात् छीन ली । इस अपमान का बदला लेने के लिए काकु ने म्लेच्छसैन्य लाकर राजा और वल्लभी का नाश करवाया । बाद में म्लेच्छसैन्य को भी रणप्रदेश में भटका दिया । इस तरह वल्लभी का नाश हुआ और काकु भी अन्त में नरक का अतिथि हुआ ।

मैत्रकवंश अपरनाम सेनापतिवंश की उत्पत्ति

आद्य शिलादित्य किसी ब्राह्मण की विधवा पुत्री से जन्मा था । बाल्यकाल से ही इसे सूर्य देव ने अपना लिया था । सूर्य का पर्यायवाची नाम 'मित्र' है । अत: शिलादित्य के वंशज मैत्रक कहलाये । ये मैत्रक बाद में गुप्त वंश के शासकों के सेनापति पद पर रहे, इसलिए इनका वंश सेनापतिवंश के नाम से भी प्रसिद्ध हुआ ।

राजा ध्रुवसेन और सभा समक्ष कल्पसूत्र का व्याख्यान

सेनापति भट्टारक गुप्त वंश की निर्बलता का लाभ लेकर वल्लभी का राजा बन बैठा । उसका पुत्र ध्रुवसेन वी.स. ९७५ में वल्लभी की राजगद्दी पर आया । यह जैन था । कुमारभुक्ति नगर आनन्दपुर में युवराज की मृत्युनिमित्तक राजा ध्रुवसेन के शोक के निवारण हेतु कल्पसूत्र का व्याख्यान सभा के समक्ष प्रवृत्त हुआ ।

श्री कुलपाक तीर्थ

दक्षिण हैदराबाद से ईशान में ७५ किलोमीटर दूर श्री कुलपाक तीर्थ है । उसका दूसरा नाम माणिक्य स्वामी है । मूलनायक श्री ऋषभदेव की माणिक्य की यह प्रतिमा भरत चक्रवर्ती की अंगूठी में प्रतिष्ठित थी । कालक्रम से यह प्रतिमा लंका में रावण और मन्दोदरी द्वारा पूजी गई । लंका का विनाश हुआ तब मन्दोदरी ने इसे समुद्र में प्रतिष्ठित कर दी, जहाँ देवों द्वारा पूजी जाती थी ।

कल्याणी के राजा शंकरगण ने अपने नगर में मारी के उपद्रव की शान्ति के लिए लवण समुद्र के अधिपति सुस्थित देव की आराधना कर उससे यह प्रतिमा

पायी। राजा रथ में प्रतिमाजी को बिराजमान कर कल्याणी ले जा रहा था कि बीच ही कुल्पाक नगर में रथ अटक गया। अतः प्रतिमा की यहीं प्रतिष्ठा की और अभिषेक-जल से कल्याणी नगर की मारी को शान्त किया। यह प्रसंग विक्रम संवत ६४० के आसपास का है।

अब हम पट्टधर एवं ग्रन्थ प्रभावक आचार्यो के इतिहास को लेकर आगे बढेंगे।

आचार्यश्री वीर सूरि (इक्कीसवें पट्टधर)

आचार्य श्री मानतुङ्गसूरि के पट्ट पर आचार्य श्री वीरसूरि पट्टधर हुए। लगभग गुप्त सं. ३०० अर्थात् वि.सं. ६७६ में आपने श्री नमिनाथ भगवान् की प्रतिष्ठा करवाई थी।

आचार्य श्री जयदेवसूरि (बाईसवें पट्टधर)

आचार्य श्री वीरसूरि के पट्ट पर आचार्य श्री जयदेवसूरि आये। आपने रणथम्भोर की पहाडी पर जिनालय में श्री पद्मप्रभस्वामी की प्रतिष्ठा करवाई थी और भाटी राजपूतों को उपदेश देकर जैन बनाया था।

आचार्य श्री देवानन्दसूरि (तेईसवें पट्टधर)

आचार्य श्री जयदेवसूरि के पट्टधर आचार्य श्री देवानन्दसूरि हुए। आपने कच्छ-सुथरी में शास्त्रार्थ कर शैवों को हराया था और प्रभास पाटण में श्री पार्श्वनाथ प्रभु की प्रतिष्ठा कराई थी।

आचार्य श्री विक्रमसूरि (चौबीसवें पट्टधर)

आचार्य श्री देवानन्दसूरि के पट्ट पर आचार्य श्री विक्रमसूरि हुए। आपने परमार क्षत्रियों को उपदेश देकर जैन बनाया था।

आचार्य श्री नरसिंहसूरि (पच्चीसवें पट्टधर)

आचार्य श्री विक्रमसूरि के पट्टधर आचार्य श्री नरसिंहसूरि हुए। आप अपने समय के अखिल श्रुत के पारगामी थे। आपने नरसिंहपुर, उमरकोट और आसपास के नगरों में नवरात्रि की अष्टमी को भैसे के बलिदान को बन्द करवाया था। खुमाण वंश के मेवाड के सूर्यवंशी राजाओं को उपदेश देकर जैन बनाया था और सर्वभक्षी यक्ष की मांस-रति छुडायी थी।

आचार्य श्री समुद्रसूरि (छब्बीसवें पट्टधर)

आचार्य श्री नरसिंहसूरि के पट्ट पर आद्य शिलादित्य के वंशज और मेवाड के के राणा बप्पा रावल खुमाण के कुलज आचार्य श्री समुद्रसूरि आये । पश्चात् खुमाण वंश मेवाड में शिसोदिया वंश के नाम से प्रसिद्ध हुआ । आ. श्री समुद्रसूरि ने दिगम्बरों को वाद में जीत कर नागदा तीर्थ में संप्रतिकालीन श्री पार्श्वनाथ भगवान् के तीर्थ की रक्षा की । वर्तमान काल में नागदा तीर्थ में श्री शान्तिनाथ प्रभु की नौ फुट की प्रतिमा से शोभित जिनालय अदबदजी के नाम से प्रसिद्ध है ।

बप्पा रावल (शिसोदिया वंश का आदिपुरुष)

बप्पा रावल वल्लभीवंश के आद्य शिलादित्य का वंशज है । चितौड के मौर्य राजा को मारकर यह राजा बन बैठा था । इसका आयुष्य १०० वर्ष का था । अनेक रानियों से उत्पन्न इसके १३० पुत्र थे । यह संभवत विक्रम की छठी सदी में हुआ है ।

आचार्य श्री मानदेवसूरि द्वितीय (सत्ताईसवें पट्टधर)

आचार्य श्री समुद्रसूरि के पट्टधर आचार्य श्री मानदेवसूरि हुए । ये प्रसिद्ध श्रुतधर याकिनीपुत्र आचार्य श्री हरिभद्रसूरि के मित्र थे । बीमारी के कारण आप सूरिमंत्र को भूल गये थे । अतः आपने गिरनार तीर्थ में जाकर तपस्या की और अंबिका देवी द्वारा श्री सीमन्धरस्वामी से पुनः सूरिमन्त्र पाया था ।

याकिनीमहत्तरापुत्र आचार्य श्री हरिभद्रसूरि

आचार्य श्री हरिभद्रसूरि पूर्वपर्याय में चितौड के राजा जितारि के पुरोहित थे । आप प्रकांड विद्वान्, वादी और प्रभावशाली थे । एक बार रास्ते में जाते समय उपाश्रय में स्वाध्याय कर रही साध्वीजी के मुख से निम्न गाथा सुनी–

चक्किदुगं हरिपणगं, पणगं चक्कीण केसवो चक्की ।
केसव चक्की केसव, दुचक्की केसव चक्की य ॥ १ ॥

अर्थ– एक के बाद एक इस तरह–दो चक्री, पांच वासुदेव, पांच चक्री, एक केशव, एक चक्री, एक केशव, दो चक्री, एक केशव और एक वासुदेव हुए हैं ।

उक्त गाथा का अर्थ चिन्तन करने पर भी समझ में नहीं आया। तब आप याकिनी साध्वीजी के निर्देश से आचार्य महाराज के पास जाकर समझ सके। विद्वत्ता का अभिमान नष्ट हो गया और आप बोल उठे- हे भगवन् ! कृपा कर मुझे अपना शिष्य बनाएँ।

इस प्रकार आप आचार्य श्री जिनदत्तसूरि के शिष्य हुए और याकिनी महत्तरा को माता मानने लगे।

हँस और परमहंस

कुछ समय के बाद हंस और परमहंस संसारी पर्याय से आपके भाणजे भी दीक्षित हुए जो बौद्धों द्वारा मारे गये। इससे आपको काफी दुःख हुआ। अन्त में आपने शूरपाल राजा की राजसभा में १४४४ बौद्धों के आचार्यों को वाद में जीत लिया। प्रतिज्ञानुसार तपे हुए तैल की कढाई में बौद्धाचार्य को डलवाने का प्रबन्ध हुआ, परन्तु आचार्य श्री जिनदत्तसूरिने जब यह वृत्तान्त सुना तब शीघ्र समरादित्य-चरित की चार गाथाएं आचार्य श्री हरिभद्रसूरि के नाम भेजी। गाथाएँ पढते ही आप शान्त हो गये और बौद्धाचार्यों को क्षमा कर दिया। इसी प्रवृत्ति के प्रायश्चित रूप में आपने १४४४ ग्रन्थों की रचना की। आपका समय विक्रम की आठवीं शती का उत्तरार्ध है।

सर्वधातु की खड्गासन में दो प्रतिमाएँ

वि०सं० ७४४ में दो भव्य खड्गासन में सर्वधातु की प्रतिमाएँ बनी है, जो आज भी पिन्डवाडा (जि० सिरोही-राज०) के मन्दिर में विद्यमान हैं।

इस समय तक अन्य आचार्य, वाचक, गणी आदि भी हुए जिनका वर्णन ग्रन्थ विस्तार के भय से नहीं कर सकते हैं, फिर भी प्राप्त ग्रन्थों के अनुसार उनके कर्ताओं का नाम और समय का निर्देश निम्न प्रकार से है-

कर्ता	समय	ग्रन्थ
श्री धर्म[illegible]	श्री वीर प्रभु के स्वहस्त दीक्षित शिष्य	उपदेशमाला
श्री [illegible]सूरि	वी. नि. ५३०	हरिवंसचरियं और पउमचरियं

कर्ता	समय	ग्रन्थ
श्री चन्द्रर्षि महत्तर श्री शिवशर्मसूरि	विक्रम की तीसरी शती प्राय: विक्रम की चौथी शती	'पंचसंग्रह' सटीक 'कम्मपयडी' और शतक नामा पांचवां-कर्मग्रन्थ
वाचक संघदास महत्तर	विक्रम की चौथी शती	वसुदेवहिंडी प्रथम भाग, ७६०० गाथा-प्रमाण, बृहत्कल्प पर लघुभाष्य और पंच-कल्प पर २५७४ गाथा-प्रमाण महाभाष्य ।
श्री धर्मसेन गणी	विक्रमी चौथी शती	वसुदेवहिंडी द्वितीय भाग
श्री अगस्त्यसिंहसूरि	प्राय: विक्रम की पांचवी शती	दशवैकालिक चूर्णी
श्री शीलांकसूरि	वी०नि० ९२५	चउपन्न महापुरिसचरियं
श्री कोट्याचार्य	विक्रम की सातवीं शती	विशेषावश्यक भाष्य पर टीका
आचार्य सिंहसूरि क्षमाश्रमण	विक्रम की सातवीं शती	द्वादशारनयचक्र पर न्यायागमानुसारिणी टीका
श्री सिद्धसेन गणी	वि. की सातवीं आठवीं शती	सभाष्यतत्त्वार्थ पर टीका
श्री जिनदासगणी-महत्तर	विक्रम की आठवीं शती	नंदिचूर्णी, अनुयोगद्वार-चूर्णी और निशीथ चूर्णी
आ.श्री उद्योतनसूरि	वि०सं० ७८५	कुवलयमाला

आचार्य श्री विबुधप्रभसूरि और श्री जयानन्दसूरि
(अट्ठाईसवें-उनतीसवें पट्टधर)

आ० श्री मानदेवसूरि के पट्टधर आचार्य श्री विबुधप्रभसूरि हुए । आ० श्री विबुधप्रभसूरि के पट्ट पर आचार्य श्री जयानन्दसूरि आये । आपके उपदेश से पोरवाल मन्त्री सामन्त ने हमीरगढ, बीजापुर, बरमाण, नांदीया, बामणवाडा और मुहरी नगर में संप्रतिकालीन मन्दिरों का जीर्णोद्धार करवाया । वि०सं० ८६१ में करहेडा पार्श्वनाथ तीर्थ की स्थापना भी आपने की ।

आचार्य श्री शीलगुणसूरि

आचार्य श्री शीलगुणसूरि विक्रम की आठवीं शती के उत्तरार्ध में महान् प्रभावक आचार्य हुए । गुजरात के राजा वनराज चावडा को उसके बाल्यकाल में आपने ही रक्षण और शिक्षण दिया था । आपके शिष्य आचार्यदेव श्रीचन्द्रसूरि हुए जिनकी मूर्ति पाटण के पंचासरा मन्दिर में आज भी विद्यमान है ।

वनराज चावडा

विक्रम की आठवीं शती के पूर्वार्ध में पंचासर (गुजरात) में जयशिखरी चावडा राज्य करता था । कन्नोज के राजा भुवड ने जयशिखरी को युद्ध में मार दिया । उसकी गर्भवती रानी ने वन में वि०सं० ७५२ वैशाखी पूर्णिमा के दिन वनराज को जन्म दिया । वनराज ने वि.सं. ८०२ में अणहिलपुर पाटण की स्थापना की और पंचासरा पार्श्वनाथ भगवान का मन्दिर बनवाया, जिसमें पूजकभाव की अपनी मूर्ति भी रखवाई । वनराज के गुजरात राज्य की स्थापना में आचार्य शीलगुणसूरि की कृपा तथा बुद्धिमान् जैनों का पूरा साथ था । यह पराक्रमी और न्यायप्रिय राजा था । १०९ वर्ष की उम्र में अनशन कर परलोक सिधार गया । महापराक्रमी चांपराज, नीना और आशक वनराज के जैन मंत्री थे ।

राजा भर्तृभट (चितौड)

राजा भर्तृभट बाप्पा रावल का प्रपौत्र था । इसने भटेवर के किले में गृहिल-विहार नाम का जिनालय बनवाकर आ. श्री बुढागणी ने विक्रम की आठवीं शती में

भगवान् आदिनाथ की प्रतिष्ठा करवाई थी ।

मेवाड राज्य की स्थापना के साथ वहाँ के राजवंश की यह एक व्यवस्था बन गई थी कि मेवाड में जहाँ नये किल्लो का निर्माण हो वहाँ भगवान् आदिनाथ के मन्दिर का निर्माण होता था ।

आचार्य श्री नन्नसूरि

आचार्य श्री नन्नसूरि पूर्व पर्याय से तलवाडा के राजा थे । एक दिन शिकार में गर्भवती हरिणी विंध गई । हरिणी के तडफते हुए गर्भ को देखकर आपकी आत्मा में दया **उमडी** और गहरा पश्चात्ताप हुआ । इसी प्रसंग से आपने वैराग्य पाकर राज्य का त्याग किया और संयम लिया । आपसे राजगच्छ निकला, जिसमें अनेक विद्वान् और वादी आचार्य हुए ।

आचार्य श्रीबप्पभट्टिसूरि और राजा आम

आ० श्री बप्पभट्टिसूरि का जन्म वि.सं. ८०० में हुआ । आपके पिता का नाम बप्प और माता का भट्टि था । आपका जन्म नाम सुरपाल था । आ० श्री सिद्धसेनसूरि के हाथों से आपकी दीक्षा वि.स. ८०७ में हुई । माता-पिता की स्मृति में दीक्षित अवस्था का आपका नाम बप्पभट्टि रखा गया । आपकी बुद्धि तेज थी । एक बार पढने या सुनने मात्र से ही कठिन श्लोक भी कंठस्थ हो जाता था । आप प्रतिदिन एक हजार श्लोक कंठस्थ कर लेते थे । आपसे आम राजा का मेलाप कुमारावस्था में हुआ था । आप आचार्य पद पर वि.स. ८११ में आरुढ हुए थे । इसी समय आपने संयम रक्षा के लिए जीवन भर छ विगइयों का त्याग किया था । आप निर्मल ब्रह्मचर्य के स्वामी और अजेय वादी थे, अत: आम राजा ने आपको 'बालब्रह्मचारी' और 'गजवर' के बिरुदों से सन्माना था ।

आपके उपदेश से आम राजा ने कन्नोज में १०१ हाथ ऊँचा जिनालय बनवाकर उसमें भगवान् महावीरस्वामी की सुवर्णमयी प्रतिमा प्रतिष्ठित कराई थी । ग्वालियर के किल्ले में भी एक भव्य जिनालय बनवाया था ।

दिगम्बर जुनागढ के रा'खेंगार को प्रसन्न कर गिरनार तीर्थ को दबा बैठे थे । इसी समय आपके सान्निध्य में आम राजा का संघ गिरनार पहुँचा तो दिगम्बर आचार्य, श्रावक और ११ राजा भी बडे सैन्य के साथ वहाँ आ पहुँचे और संघ को

तीर्थ यात्रा करने से रोका। परस्पर युद्ध के लिए आह्वान हुआ और दोनों तर्फ युद्ध की तय्यारियें होने लगी, परंतु आचार्य श्री ने दोनों पक्षों को शान्त करते हुए कहा कि तीर्थ यात्रा के पवित्र कार्य में मानव संहार शोभा नहीं देता है। हम आचार्य एक होकर इसका निर्णय कर लेते हैं। इस प्रकार दिगम्बर आचार्य तीन दिन तक मन्त्रप्रयोग करने पर भी श्वेतांबर कन्या में अंबिका देवी को उतारने में निष्फल रहे। तब आचार्य श्री के एक क्षण मात्र के प्रयत्न से दिगम्बर कन्या में अंबिका देवी उतर आई। वह कन्या स्पष्ट रीति से 'सिद्धाणं बुद्धाणं' सूत्र की 'उज्जिंतसेलसिहरे' इत्यादि चौथी गाथा बोलने लगी। इसी समय सर्वत्र 'श्वेतांबरों की जय' ध्वनि गूँज उठी। दिगम्बर वहाँ से चले गये और गिरनार पुनः श्वेतांबर तीर्थ बना।

आपने अनेक ग्रन्थों की रचना की, 'चतुर्विंशतिजिनस्तुति' और 'सरस्वतीस्त्रोत' आज भी उपलब्ध हैं। वि.सं. ८९५ में आप पाटलिपुत्र में अनशन कर स्वर्गवासी हुए। आचार्य श्री नन्नसूरि और गोविन्दसूरि आपके गुरु भाई थे।

कृष्णऋषि

युगप्रधान श्री हारिलसूरि से हारिल वंश निकला। इसी वंश में आचार्य श्री तत्त्वाचार्य के शिष्य आ०श्री० यक्षमहत्तर हुए, जिन्होंने खट्टकूप (खांटू) में भव्य जिलानय की स्थापना की थी। इनके शिष्य कृष्णऋषि से कृष्ण गच्छ चला।

कृष्णर्षि निर्मल संयमी और घोर तपस्वी थे। इन्होंने चार महीने के उपवास तक के तप किये थे। आप प्रतिवर्ष अधिक से अधिक ३४ पारणे करते थे और प्रायः पारणे स्थानों पर नूतन मन्दिरों का निर्माण होता था। शक. सं. ७१९ वि.सं. ८५४ में नागोर में भी भगवान् महावीरस्वामी के जिनालय की प्रतिष्ठा आपने करवाई थी। तप के प्रभाव से आपके नाम मात्र से मनुष्य की आधि व्याधि और उपाधि नष्ट हो जाती थी। आपके चरणोदक (पांव के पानी) से सर्प आदि के विष उतर जाते थे। आपके स्पर्श, मल, मूत्र आदि से व्याधि दूर हो जाती थी। अनेक राजा-महाराजा आपके भक्त थे। आपने अनेक राजा, श्रेष्ठी और ब्राह्मणों को दीक्षा देकर शिष्य बनाया था। आप श्मशान में जाकर ध्यान करते थे, जहाँ अनेक उपसर्गो के बीच भी अडिग रहते थे।

आचार्य श्री धनेश्वरसूरि

आचार्य श्री धनेश्वरसूरि ने वल्लभी के बौद्ध राजा शिलादित्य को उपदेश देकर जैन बनाया था और गुप्त सं. ४७७ वि.सं. ८५२ में 'शत्रुञ्जयमाहात्म्य' ग्रन्थ की रचना की। आपसे धनेश्वर गच्छ निकला।

आचार्य श्री रविप्रभसूरि और आचार्य श्री यशोदेवसूरि (तीसवें और इकतीसवें पट्टधर)

आ० श्री जयानन्दसूरि के पट्ट पर आ० श्री रविप्रभसूरि आये और आ० श्री रविप्रभसूरि के पट्टधर श्री यशोदेवसूरि हुए। ये ब्राह्मण विद्वान् थे। वैराग्य पाकर जैनी दीक्षा ली और शास्त्रों का अभ्यास कर महान् प्रभावक आचार्य हुए। ये निर्मल चारित्र के पालक थे। 'सरस्वती-कंठाभरण' बिरुद आपको प्राप्त था।

आचार्य श्री प्रद्युम्नसूरि (बत्तीसवें पट्टधर)

आ० श्री यशोदेवसूरि के पट्ट पर आ० श्री प्रद्युम्नसूरि आये। शंकराचार्य के समय में धर्म की जो क्षति हुई थी उसकी पूर्ति के लिए आप अनेक बार पूर्व और मगध में पधारे। आपने सात बार सम्मेतशिखर महातीर्थ की यात्रा की। आपके उपदेश से पूर्व देश में १७ नये मन्दिर बने, अनेक मन्दिरों के जीर्णोद्धार हुए और ११ ज्ञानभंडार स्थापित हुए।

आचार्य श्री मानदेवसूरि तृतीय (तेतीसवें पट्टधर)

आ० श्री प्रद्युम्नसूरि के पट्टधर आचार्य श्री मानदेवसूरि हुए। आपने 'उपधान-विधि' ग्रन्थ रचा।

आचार्य श्री विमलचन्द्रसूरि (चौंतीसवें पट्टधर)

आ० श्री मानदेवसूरि के पट्ट पर आ० श्री विमलचन्द्रसूरि आये। चितौड में आपको सुवर्ण-सिद्धि की शक्ति प्राप्त हुई थी। गोपगिरि (ग्वालियर) की राजसभा में वाद में विजय प्राप्त कर लेने से वहाँ का राजा मिहिरभोज आपको उपासक बना था। चितौड का अल्लटराज भी आपका उपासक था। शत्रुञ्जय तीर्थ में १०० वर्ष की वय में अनशन कर आप वि०सं० ९८० में स्वर्गवासी हुए।

आचार्य श्री वीरसूरि

भिन्नमाल के कोटिध्वज सेठ शिवनाग और उनकी पत्नी पूर्णलता से एक बालक का जन्म हुआ, जिसका नाम वीरकुमार रखा । यौवनवय में वीरकुमार की शादी सात कन्याओं से हुई । माता-पिता की मृत्यु से वीरकुमार वैराग्य पाकर प्रत्येक पत्नी को करोड-करोड द्रव्य देकर शेष धन को मन्दिरों में और संघ-भक्ति में लगा दिया । गृहस्थ के भेष में परिग्रह का त्याग कर साधना करने लगे । रात्रि में नगर बाहर जाकर कायोत्सर्ग में रहते थे, जहाँ अनेक उपद्रवों को सह लेते थे । इस बीच आ०श्री विमलचन्द्रसूरि के दर्शन हुए और उनके हाथों से वि.सं. ९८० में दीक्षा ली ।

आचार्य श्री के पास से आपने गणिविद्या और अंगविद्या शास्त्रों की आम्नाय पाई । विरूपाक्ष यक्ष के मन्दिर में पशु-बलि बन्द करवाई एवं इसी यक्ष की सहायता से आपने अष्टापद तीर्थ की यात्रा की । आप मन्त्र-सिद्ध थे । पाटण का राजा चामुण्डराय आपका उपासक था । राजगच्छ के आचार्य श्री वर्धमानसूरि ने आपको आचार्य पद दिया था ।

आपने परमार राजपुत्र भद्रकुमार को दीक्षा शिक्षा देकर विद्वान् बनाया, अन्तिम अवस्था में भद्रमुनि को आचार्य पद से अलङ्कृत कर उनका नाम आचार्य श्री चन्द्रसूरि रखा । अन्त में अनशन कर आप स्वर्ग पधारे ।

आचार्य श्री जीवदेवसूरि

इस बीच अनेक प्रभावक आचार्य हुए । आचार्य श्री जीवदेवसूरि मन्त्रसिद्ध हुए । इनके पास 'अप्रतिचक्रादेवी' विद्या और 'परकायप्रवेश' विद्या थी । एक बार आप प्रभास पाटण पधारे, तब वहाँ श्रीचन्द्रप्रभस्वामी की प्रतिमा के सन्मुख आकर आपको सोमदेव महादेव, ब्रह्मा, विष्णु, सूर्य, गणपति, स्कन्द वगैरह की प्रतिमाओं ने नमस्कार किया था ।

आचार्य श्री सिद्धर्षि

आप कर्मवाद और ज्योतिष के अद्वितीय विद्वान् गर्गषि से दीक्षित हुए थे । पूर्व पर्याय से व्राह्मण और कवि माघ के चचेरे भाई थे । जैनी दीक्षा लेकर जैन दर्शन का अध्ययन किया । पश्चात् बौद्ध दर्शन के अध्ययन हेतु महाबोधनगर

जाने की ठानी । जाते समय अपने गुरुभाई दुर्गस्वामी को आप वचन दे गये कि वहाँ मतिभ्रम से बौद्धधर्म के प्रति रुचि हो जायगी तो अवश्य एक बार आपसे मिलने के बाद ही निर्णय लूंगा ।

आप गुप्तवेश से महाबोधनगर में जाकर अध्ययन करने लगे । अध्ययनकाल में बौद्ध धर्म के प्रति रुचि होने लगी, परन्तु वचनपालन हेतु दुर्गस्वामी के पास आये । गुरु भगवन्त ने आपको समझाकर स्थिर किया । दुबारा गये और वापिस आये । इस तरह इक्कीस बार जाना आना हुआ । अन्तिम बार आ० श्री हरिभद्रसूरि रचित चैत्यवंदन सूत्र पर ललितविस्तरावृत्ति को पढकर सदा के लिए स्थिर हो गये । आपकी अनेक रचनाओं में वि.सं. ९६२ की रची हुई 'उपमिति- भवप्रपञ्च कथा' विश्व का अद्वितीय रुपक ग्रन्थ है ।

राजगच्छीय आचार्य श्री प्रद्युम्नसूरि

राजगच्छीय आचार्य श्री प्रद्युम्नसूरि वादी और विद्वान् थे । आपने सपादलक्ष, ग्वालियर और तलवाडा की राजसभाओं में वाद में विजय पाकर वहाँ के राजाओं को प्रभावित किया था । मेवाडा के राणा अट्टलराय की राजसभा में दिगम्बराचार्य को जीतकर अपना शिष्य बनाया था । इसी प्रसङ्ग की स्मृति में चितौड के किले में विजयस्तंभ बना, जो आज भी इस वृत्तान्त की साक्षी दे रहा है । यह प्रसङ्ग विक्रम की दशवीं शती के पूर्वार्ध का है ।

तर्कपंचानन आचार्य श्री अभयदेवसूरि (राजगच्छीय)

आ.श्री प्रद्युम्नसूरि के शिष्य आचार्य श्री अभयदेवसूरि हुए । आप पूर्व पर्याय से राजकुमार थे । अत: आपको राजर्षि भी कहते थे । आपके चरणोदक से असाध्य रोग भी मिट जाते थे । आप अजेय वादी भी थे । इसीलिए आपको 'तर्कपंचानन' का बिरुद प्राप्त था । 'सम्मति-तर्क' ग्रन्थ पर आपने २५००० श्लोक प्रमाण 'वादमहार्णव' नाम का टीकाग्रन्थ रचा । उत्तराध्ययन सूत्र के बृहट्टीकाकार वादी वेताल आ.श्री शान्तिसूरि आपसे न्यायशास्त्र पढे थे ।

आचार्य श्रीधनेश्वसूरि (राजगच्छीय)

राजगच्छीय आ.श्री धनेश्वरसूरि पूर्व पर्याय से कन्नोज राजकुमार धन थे । इनके शरीर पर जहरी फफोले हो गये थे, जो अनेक उपचार करने पर भी मिटे नहीं । आखिर आ.श्री अभयदेवसूरि के पादप्रक्षालन जल को छांटने से शान्त हो गये । बस, तुरन्त ही

आपने आचार्य श्री के पास दीक्षा ले ली। आचार्य श्री ने भी आपको योग्य जानकर शास्त्र पढाये, आचार्य पद से अलङ्कृत किया और आपका नाम आ. श्री धनेश्वरसूरि रखा। आपका बडा प्रभाव था। धारानगरी का राजा मुंज आपको अपना गुरु मानता था। अन्य राजा भी आपके उपासक थे। चितौड में १८००० ब्राह्मणों को आपने जैन बनाये थे।

आचार्य मल्लवादी द्वितीय

आ.श्री मल्लवादी ने बौद्धाचार्य धर्मकीर्ति के 'न्यायबिन्दु' ग्रन्थ पर लघु धर्मोत्तर की टीका कर टिप्पण ग्रन्थ बनाया है। आचार्य श्री जिनयशसूरि आपके बडे गुरुभाई थे, जिन्होंने मेवाड के राणा अल्लटराय की राजसभा में आचार्य श्री नन्नसूरि की आज्ञा से अपना बनाया 'प्रमाणशास्त्र' ग्रन्थ पढकर सुनाया था।

सांडेरगच्छीय आचार्य ईश्वरसूरि

सांडेरगच्छीय आचार्य श्री ईश्वरसूरि बडे प्रभावक हुए। आपके ५०० शिष्य थे। मुंडारा की बदरीदेवी आपको प्रत्यक्ष थी। इसी देवी की सूचना से आपने पलासी (जि० सिरोही-राज०) जाकर सुधर्मा के माता पिता को समझा कर ६ वर्ष के सुधर्मा को दीक्षा दी थी, जो आगे जाकर आ० श्री यशोभद्रसूरि के नाम से महाप्रभावक हुए।

आचार्य श्री यशोभद्रसूरि (सांडेरगच्छीय)

आ. श्री यशोभद्रसूरि का जन्म सं. ९५७ में पलासी (बामणवाडा तीर्थ के पास) में हुआ। आपका जन्म नाम सुधर्मा था। आ.श्री ईश्वरसूरि के पास वि० सं० ९६३ में आपने दीक्षा ली। मुंडारा की बदरी देवी आपको भी सिद्ध थी। वि.सं. ९६८ में आप आचार्य पद से अलङ्कृत हुए। सूरिपद के समय जीवनपर्यंत छ विगइयों का त्याग और सिर्फ ८ कवल आहार लेने की आपने प्रतिज्ञा की। सूर्य देव ने आपको दूर-दूर के पदार्थों का ज्ञान कराने वाली अंजनकूपिका तथा सिद्धमन्त्रों की एक सुवर्णाक्षरीय पोथी दी थी। आप गगनगामिनी विद्या से प्रतिदिन पांच तीर्थो की यात्रा कर आहार लेते थे। आपको अनेक यन्त्र और मन्त्र सिद्ध थे, जिससे गुजरात के सामन्तसिंह चावडा, मूलराज सोलंकी, मेवाड का अल्लटराय आदि अनेक राजा आपसे प्रभावित थे। अल्लटराय ने आहड में भगवान् पार्श्वनाथ का मन्दिर बंधवाकर आपसे प्रतिष्ठा करवाई थी। आपने खेडब्रह्मा से भगवान् श्री आदीश्वर का मन्दिर आकाशमार्ग से रात में लाकर नाडलाई में स्थापित किया था, जो आज भी विद्यमान् है। आ.श्री. शालिभद्रसूरि आदि आपके अनेक प्रभावक शिष्य हुए।

मुनि बलभद्र अपरनाम आ. श्री वासुदेवसूरि

मुनि बलभद्र आ० श्री यशोभद्रसूरि के शिष्य हुए। सूर्यदेव से आपको भी कुछ विद्याएँ मिली थी। एक दिन बकरी की लिंडियों को सुवर्ण बना दिया। इसीलिए आ०श्री० यशोभद्रसूरि ने आपको अलग रहने की आज्ञा दी और आ.श्री. शालिभद्रसूरि को अपने पट्ट पर स्थापित किया।अब आप बलभद्रमुनि पर्वत की गुफाओं में रहने लगे, जहाँ अनेक विद्याएँ सिद्ध हुई। एक बार जैन संघ गिरनार तीर्थ पहुँचा। जूनागढ के बौद्ध राजा रा'खेंगार ने संघ को यात्रा करने से अटका दिया। आकाश में अंबिका देवी की दिव्यवाणी हुई कि आ० श्री यशोभद्रसूरि अथवा बलभद्रमुनि यहाँ आकर अपनी विद्या के प्रभाव से इस तीर्थ को अपना बनावें, तब संघ यात्रा कर सकेगा। संघ की विनति से बलभद्रमूनि आकाशमार्ग से जूनागढ पधारे।

राजा और मंत्री ने कर्णवीर लता के घुमाने मात्र से हजारों सैनिकों का एक साथ नाश करने की तथा पुनर्जीवित करने की आपकी अद्‌भुत शक्ति का परिचय पाकर आपसे माफी मांगी और तीर्थ जैनों को वापिस लौटा दिया। संघ भी पूजा यात्रा कर अपने स्थान लौटा।

मेवाड का राजा अल्लटराय आपसे काफी प्रभावित था और उसने ही आपको आचार्य पद देकर आपका नाम वासुदेवसूरि रखा। कुछ समय बाद हत्थुंडी के राजा विदग्धराज ने विशाल जिनालय बनवाकर वि०सं० ९७३ में आपसे भगवान् श्री आदिनाथ की प्रतिष्ठा करवाई। विदग्धराज का पुत्र मम्मटराज भी आपका उपासक रहा। 'कर्णवीरलताभ्रामक' के नाम से आप प्रसिद्ध हुए।

खिमऋषि

चितौड के पास वडगाम में बोहा नामक का छोटा व्यापारी था, जो बहुत गरीब था। एक दिन ठोकर लगने से घी ढुल गया। गांव वालों ने सहायता कर दूसरा घी दिलवाया, वह भी पहिले की तरह नष्ट हो गया। भाग्य की विचित्रता पर विचार करने से वैराग्य प्रकटा और आ०श्री यशोभद्रसूरि के पास दीक्षा ले ली। दीक्षा दिन से ज्ञान-ध्यान में लग गये।

एक बार किसी गांव के बाहर आप ध्यान लगाये थे, तब कुछ ब्राह्मण लडकों ने उपसर्ग किया, जिसे आपने क्षमापूर्वक सहा। समीप में रहे शासनदेव ने उन लडकों को

खून की उल्टियाँ करा दीं और निश्चेष्ट कर दिया। लडकों के माँ बापों ने आपसे माफी मांगी औरआपका चरणोदक लडकों पर छांटा, तब लडके स्वस्थ हो गये। आपकी क्षमाशीलता से आपका नाम खिमऋषि रखा।

आप धोर तप और विविध अभिग्रह करते थे। एक बार "धारापति मुंज के छोटे भाई सिंधुल का मित्र 'रावकृष्ण नहाया हो। केश बिखरे हों। और उद्विग्न हो' इस स्थिति, में अमुक, मालपुडे वहरावे तो पारणा करुँ। यह अभिग्रह ३ महीने और ८ दिन में पूर्ण हुआ। दुसरी बार सिन्धुलका हाथी पांच लड्डु वहरावे तो पारणा करुँ। यह अभिग्रह ५ महीने और १८ दिन में पूरा हुआ। आपने ऐसे अभिग्रह कुल ८४ किये जो सभी पूर्ण हुए। एक बार बन्दर ने तथा एक बार मदोन्मत साँड ने आपको पारणा कराया था। कहीं नहीं तो आकाश से कुसुम-वृष्टि भी हुई।

एक बार मुंज राजा के सभी हाथी पागल हो गये, जो खिमऋषि के चरणोदक छाँटने से स्वस्थ हुए। एक श्रेष्ठीपुत्र सर्प के दंश से मृतप्राय हो गया था, जो आपके चरणोदक से पुन: उज्जीवित हुआ।

कृष्ण राव ने आपसे अपना अल्प आयुष्य जान दीक्षा ली और कृष्णऋषि नाम धारण किया। इस समय भी गगन से पुष्पवृष्टि हुई। कृष्णऋषि छह महीने का आयुष्य पालकर स्वर्ग सिधार गये।

खिमऋषि ने ३० वर्ष की वय में दिक्षा ली, ७ वर्ष गुरुसेवा की और ५३ वर्ष घोर तप किया। इस तरह आप ९० वर्ष की उम्र में स्वर्गवासी हुए।

आचार्य श्री उद्योतनसूरि (३५वें पट्टधर)

आ श्री विमलचन्द्रसूरि के पट्ट पर आचार्य श्री उद्योतनसूरि हुए। आपने वि. ९९४ में आबू पर्वत के निकट एक वट वृक्ष के नीचे बैठे हुए अपने सर्वदेव प्रमुख आठ शिष्यों को आचार्य पद दियाथा। अत: गच्छ का नया नाम 'वट-गच्छ' प्रसिद्ध हुआ। धीरे धीरे गुणी श्रमणों कि वृद्धि होने से वट-गच्छ का ही नामान्तर 'बृहद् गच्छ' प्रसिद्ध हुआ।

आचार्य श्री सर्वदेवसूरि (३६वें पट्टधर)

आ.श्री उद्योतनसूरि के पट्ट पर आचार्य श्री सर्वदेवसूरि आये। ये सुशिष्यों की लब्धि वाले थे। आपने वि.सं. ९८८ में हत्थुंडी के राजा जगमाल को

सपरिवार जैन बनाया था और चन्द्रावती नरेश के नेत्र-तुल्य कुंकुण मन्त्री को उपदेश देकर अपना श्रमण शिष्य बनाया था । वि.सं. १०१० में आपने रामसैन्य नगर में भगवान् चन्द्रप्रभ स्वामी की प्रतिष्ठा की थी । वि.सं. १०५५ के आसपास आप स्वर्गवासी हुए ।

आचार्य श्री वर्द्धमानसूरि

चैत्यवास का त्यागकर वर्धमान ने आचार्य श्री उद्योतनसूरि के पास दीक्षा ली थी और शास्त्राभ्यास किया था । वि.सं. ९९५ के बाद अजारी (जि. सिरोही-राज.) के भगवान् महावीर स्वामी के मन्दिर में आचार्य श्री ने आपको भी आचार्य पद से अलङ्कृत किया ।

आचार्य श्री जिनेश्वरसूरि और आचार्य बुद्धिसागरसूरि

बनारस के पण्डित कृष्णगुप्त ब्राह्मण के श्रीधर और श्रीपति नाम के दो बुद्धिमान् पुत्र थे । इन दोनों ने आ.श्री वर्धमानसूरि का परिचय पाकर उनसे दीक्षा ली और शास्त्राभ्यास किया । क्रम से दोनों आचार्य पद से अलङ्कृत हुए और आ.श्री जिनेश्वरसूरि और आ. श्री बुद्धिसागरसूरि के नाम से प्रसिद्ध हुए ।

इस समय पाटण में चैत्यवासियों का ही वर्चस्व था । वि.सं. १०८० में राजा भीमदेव की राजसभा में आप दोनों ने संवेगी साधुओं का भी समान वर्चस्व स्थापित किया ।

आ.श्री जिनेश्वरसूरि ने हारिभद्रीय अष्टक प्रकरण की वृत्ति, प्रमाणशास्त्र, प्रकरण और प्रबन्धों की रचना की । आ.श्री बुद्धिसागरसूरि ने व्याकरण ग्रन्थों की रचना की । जो 'बुद्धिसागरग्रन्थाग्र सप्तसहस्त्रकल्पम्' 'शब्दलक्ष्यलक्ष्म' और 'पंचग्रंथी' नाम प्रसिद्ध हुए ।

आचार्य श्री अभयदेवसूरि (नवांगी टीकाकार)

धारा नगरी के श्रेष्ठी महीधर के पुत्र अभयकुमार ने आ.श्री जिनेश्वरसूरि से दीक्षा ली । शास्त्राभ्यास कर आप आचार्य पद से अलङ्कृत हुए । पूर्व के पापोदय से आपको कुष्ठ रोग हो गया । 'जय तिहुअणवरकप्प' स्तुति करने से भगवान् श्री

स्तंभनपार्श्वनाथ की प्रतिमा प्रकट हुई, जिसके न्हवण-जल से आपका रोग मिट गया ।

आपने स्थानांगादि नौ अंगसूत्रों की टीकाएँ रचीं, जिनका संशोधन उस समय के श्रुतवृद्ध आ० श्री द्रोणाचार्य ने किया । अन्य ग्रन्थों की भी आपने रचना की । वि.सं. ११३५ के आसपास आप स्वर्गवासी हुए ।

मुहम्मद गजनी

मुहम्मद गजनी ने वि.सं. १०८० में भारत पर आक्रमण किया । वि.सं. १०८१ में भिन्नमाल, पाटण, चन्द्रावती, जूनागढ, देलवाडा (आबू) सोमनाथ वगैरह मन्दिरों को तोडा और लूटा । लौटते समय अज्ञात रास्ते से सिन्ध में हो कर गजनी पहुँचा, जिसमें उसके सैन्य की काफी हानि हुई ।

आचार्य श्री शान्तिसूरि (वादीवेताल)

राधनपुर के पास के उण गाँव के श्रेष्ठी धनदेव के पुत्र भीम ने थारापद्रगच्छ के आ० श्री विजयसिंहसूरि के पास दीक्षा ली, जिसका नाम शान्तिभद्र रखा गया । राजगच्छीय अभयदेवसूरि के पास आगमशास्त्रों का अभ्यास किया । आचार्य पद के समय आपका नाम श्री शान्तिसूरि रखा गया ।

राजा भीमदेव की राजसभा में आपको 'कवीन्द्र' और 'वादिचक्रवर्ती' के बिरुद मिले ।

घारा नगरी में भोज राजा की सभा के प्रधान कवि धनपाल ने 'तिलकमञ्जरी' ग्रन्थ की रचना की, जिसका संशोधन आपने वि.सं. १०८३ के आसपास किया ।

सरस्वती देवी से आपको आशीर्वाद प्राप्त था कि आप हाथ ऊँचाकर वाद करने पर विजयी बनेंगे । राजा भोज की सभा में ८४ वादियों की जीत लेने पर आपको ''वादिवेताल'' का बिरुद प्राप्त हुआ ।

एक बार पाटण में किसी श्रेष्ठिपुत्र को सर्पदंश के कारण मृत मानकर जमीन में गाड दिया था, जिसे आपने बाहर निकलवाकर हाथ के स्पर्श मात्र से पुनः जीवित किया था ।

आपके पास आ. श्री मुनिचन्द्रसूरि (४० वें पट्टधर) ने षड्दर्शन का अध्ययन किया था। आपश्री ने ४१५ राजकुमारों को उपदेश देकर जैन बनाया था। आपकी ग्रन्थरचना निम्न प्रकार है :- (१) श्री उत्तराध्ययनसूत्र की बृहद्वृत्ति, (२) जीवविचार प्रकरण, (३) धर्म- रत्नप्रकरण, (४) संघाचार चैत्यवंदनभाष्य अपर नाम 'संघसमाचारभाष्य, (५) अर्हदभिषेकविधि अपर नाम पर्वपंजिका जिसका सातवाँ पर्व 'बृहत् शान्ति' है, इत्यादि।

आपके व्याख्यान में 'नागिनी' देवी आया करती थी। वि.सं. १०९६ में गिरनार-तीर्थ में पच्चीस दिन का अनशन कर आप स्वर्गवासी हुए।

विमलमन्त्री और विमलवसही
(आबू-देलवाडा तीर्थ)

विमलमन्त्री कुशल धनुर्धर और गुजरात के राजा भीमदेव (वि.सं. १०७८-११२०) के सेनापति थे। पाटण से चन्द्रावती आकर रहने लगे तब विद्याधर गच्छकी जालीहर शाखा के आ०श्री धर्मघोषसूरि के प्रवचनों से प्रभावित होकर युद्धों में लगे पापों का प्रायश्चित करना चाहा। आचार्य श्री ने प्रायश्चित में आबू तीर्थ का उद्धार कराने को कहा।

आचार्य श्री के आदेश से मन्त्रिराज ने आराधना कर अंबिका देवी को प्रत्यक्ष किया। जब देवी ने वर मांगने को कहा तब मन्त्री ने पुत्र की प्राप्ति और आबू तीर्थ के उद्धार के वर मांगे। देवी ने कहा-दो में से एक इच्छा पूर्ण हो सकेगी। मन्त्रिराज ने तनिक सोचकर आबू तीर्थ के उद्धार का वर मांगा। देवी 'तथास्तु' कहकर अन्तर्धान हो गई।

कुछ ही समय में १८,५३,००,००० रुपयों के व्यय से अद्भुत कलाकृति से युक्त ५४ देवकुलिका वाला मन्दिर बन गया, जिसकी प्रतिष्ठा वि.सं. १०८८ में हुई। इन मन्दिरों के कारण ही आबू विश्वविख्यात है।

आचार्य श्री द्रोणाचार्य

आचार्य श्री द्रोणाचार्य पूर्व पर्याय से नाडोल के चौहान राजवंशी और गुजरात के राजा भीमदेव (१०७८-११२०) के मामा थे। आप विद्वत्ता और त्याग की मूर्ति थे। आपने 'ओघनिर्युक्ति' की टीका रची तथा आ०श्री अभयदेवसूरि द्वारा रचित नवांगी टीकाओं का संशोधन किया। आपका समय अनुमानतः वि.सं. १०६० से ११४५ है। आपने अनेक चौहान और सोलंकियों को जैन बनाया।

आचार्य श्री सूराचार्य

आ० श्री द्रोणाचार्य के शिष्य आ० श्री सूराचार्य हुए। ये पूर्व पर्याय से आचार्य के भतीजे थे। श्री सूराचार्य स्वयं प्रकाण्ड विद्वान्, वादी और कवि थे और अपने शिष्यों को भी उच्चकोटि के विद्वान् और वादी बनाना चाहते थे। इसलिए शिष्यों के प्रति सख्ती वर्तते थे। आ० श्री द्रोणाचार्य को यह ज्ञात हुआ, तब मीठा उपालंभ देते हुए कहा कि अल्पबुद्धि वाले शिष्यों से ऐसी आशा नहीं रखनी चाहिए और शासन-प्रभावना करनी हो तो मालवा में जाकर भोजराज की सभा को जीत आओ।

गुरु के उपालंभ को आशीर्वाद समझ कर आपने धारा की तरफ विहार किया। राजा भोज ने भी बडे सन्मान से आपका नगर प्रवेश करवाया।

राजा द्वारा षड् दर्शनों की एकता का निष्फल प्रयास

एक दिन भोजराज ने षड् दर्शनों के लगभग एक हजार आचार्यों को एक स्थान में बन्द कर आदेश दिया कि सभी मिलकर एक ऐसे दर्शन की रचना करो जिससे भेद मिट जाय, भ्रान्ति न रहे। ध्यान रहे कि यह कार्य पूरा करेंगे तब ही मुक्त हो सकेंगे।

सभी धर्माचार्यो ने श्री सूराचार्य को विज्ञप्ति करवाई कि आप हमें कैसे भी मुक्त करावें। श्री सूराचार्य आश्वासन देकर राजा भोज से मिले और कहा- राजन ! धारा में अनेक मन्दिर और अनेक बाजार आदि अलग अलग क्यों है ? आपके मत से सभी एक हो जाते तो लोगों को भटकने का दु:ख न रहता।

भोजराज- सभी को अलग-अलग माल की जरुरत होती है। यदि एक ही स्थान में सभी ग्राहक इकट्ठे हो जाएँ तो बडी गडबडी मच जाय। अत: आवश्यकता के अनुसार अलग-अलग बाजार रखे गये हैं, जो नगर-व्यवस्था के लिए आवश्यक भी है।

आचार्य- राजन् ! लोग भी भिन्न-भिन्न रुचि के होते हैं। जो दयाप्रेमी हैं वे जैन धर्म को पालें, जो खाने-पीने के शौकीन है वे कौल धर्म को मानें, व्यवहार-प्रधान वैदिक धर्म को अपनावें और मोक्ष-रुचि निरंजन देव की उपासना करें। एवं जो संस्कार जीवों में चिरकाल से रुढ है वे एकदम कैसे छूट सकेंगे ?

राजा को आचार्य श्री की युक्ति से संतोष हुआ और सभी धर्माचार्यो को मुक्त कर दिया गया।

एक बार आचार्य श्री ने धारा के संस्कृत-विद्यालय में जाकर भोजव्याकरण के मंगलाचरण की क्षति निकाली जिससे राजा बडा प्रभावित हुआ और राजसभा में आचार्य श्री का खूब सन्मान किया।

एक दिन भोजराजा ने अपनी सभा के पांच सौ पण्डितों से कहा कि तुम लोग सूराचार्य को पराजित कर सको तो अच्छा रहेगा, परन्तु कोई पण्डित तय्यार न हुआ। अन्त में एक चतुर पण्डित ने राजा की सम्मति से एक भोले सोलह वर्ष के विद्यार्थी को न्यायशास्त्र की कुछ पंक्तियाँ रटाकर खडा किया। जब वह बोलने लगा तो आचार्यश्री ने उसे बीच में अटका कर पूछा- तू अशुद्ध पद क्यों बोलता है ? भोले विद्यार्थी ने कहा कि मेरी पोथी में ऐसा लिखा है।

श्री सूराचार्य हँसकर बोले- जैसा भोजव्याकरण का मंगलाचरण वैसा ही भोजसभा का शास्त्रार्थ। मालवराज ! बस अब मैं जाता हूँ। इतना कह कर उपाश्रय में चले गये।

राजा के क्रोध और लज्जा का पार न रहा। उसने सूराचार्य को पकड लाने के लिए सुभटों को भेजा, किन्तु धारा में रहे आ०श्री चूड और कवि धनपाल ने पहले से ही उन्हें गुप्तवेश में उपाश्रय से निकाल कर गुजरात की तरफ भेज दिया था।

राजा भोज को जब यह वृत्तांत मालूम हुआ तब मन ही मन बोल उठा कि गुजराती साधु ने मेरी सभा को ही नहीं किन्तु मेरी चालाकी को भी जीत लिया।

श्री सूराचार्य ने वि.सं. १०८० में गद्य-पद्यमय 'नेमिनाथ-चरित' तथा बाद में 'नाभेय-नेमि-द्विसंधानकाव्य' की रचना की। अपने शिष्यों को भी बडा विद्वान् और वादी बनाया।

आ. श्री गोविन्दसूरि और आ. श्री वर्धमानसूरि

आ.श्री गोविन्दसूरि चैत्यवासी थे। इनका अपरनाम आ.श्री विष्णुसूरि था। गुजरात का राजा प्रथम कर्णदेव (११२०-११५०) आपका बालमित्र और भक्त था। भीमदेव और सिद्ध राज भी आपके भक्त थे। आपकी विद्वत्ता के कारण चैत्यवासी और संवेगी साधु आपसे पढते थे।

आपके शिष्य आ श्री वर्धमानसूरि भी बडे विद्वान् हुए जिन्हों ने शाकटायन व्याकरण पर वि.सं. ११८७ में 'गुणरत्नमहोदधि' नामक ग्रन्थ स्वोपज्ञवृत्ति के साथ रचा।

आ. श्री देवसूरि (३७वें पट्टधर)

आचार्य श्री सर्वदेवसूरि के पट्टधर आ० श्री देवसूरि हुए । आप अत्यन्त रूपवान् थे । इसीलिए राजा कर्णदेव ने आपको 'रूपश्री' का बिरुद दिया था । वि.सं. ११२५ के करीब आप स्वर्गवासी हुए ।

वाचनाचार्य शोभनमुनि

मध्यप्रदेश के सांकाश्यनगर के विद्वान् ब्राह्मण देवर्षि सपरिवार धारा में आकर बसे और राजमान्य बने । इन्होंने अपने कमाये धन को जमीन में स्थापित किया था, किन्तु किसी को बतलाया न था । सर्वदेव नाम का इनका पुत्र था । उसकी सोमश्री नाम की पत्नी थी तथा धनपाल और शोभन नाम के दो पुत्र थे ।

सर्वदेव ने आ० श्री महेन्द्रसूरि से पिता द्वारा गाडे हुए धन के स्थान को जान-कर प्रचुर धन प्राप्त किया । बदले में सर्वदेव ने आचार्य श्री को अपना छोटा पुत्र शोभन सोंप दिया, जो दीक्षा लेकर जैन मुनि बना ।

इसी प्रसंग से धनपाल ने, जो मुंजराज और भोजराज को सभा का मान्य पण्डित था, मालवा में जैन साधुओं का विहार बन्द करा दिया ।

शोभन मुनि शास्त्रों का अध्ययन कर वाचनाचार्य बने और धारा में पधारे, जहाँ अपनी विद्वत्ता से और साध्वाचार के सुन्दर पालन से धनपाल के मिथ्यात्व को नष्ट किया और उसे सच्चा जैन बनाया ।

पश्चात् इसी धनपाल ने आ० श्री महेन्द्रसूरि को बडे सन्मान के साथ धारा में लाकर पूरे मालवा में जैन साधुओं का विहार खुला करवाया ।

शोभनमुनि विद्वत्ता के साथ अद्भुत काव्यशक्ति के भी स्वामी थे । आपने यमक-अलंकार में 'चतुर्विंशतिजिनस्तुति' की रचना की, जिस पर अनेक टीकाएँ रची गई है ।

सुना गया है कि शोभन मुनि ने भिक्षा-अटन करते-करते यह ग्रन्थ रचा । एक बार किसी ने आपको ग्रन्थ-रचना में मग्न जानकर भिक्षा में भोजन के स्थान पर पत्थर रख दिया । उपाश्रय में आकर आचार्य श्री को पात्र बताया तब ही आपको इस घटना का खयाल आया । ऐसी थी आपकी एकाग्रता ।

कविराज धनपाल

धनपाल की विद्वता से प्रभावित होकर मुंजराज ने इन्हें 'कूर्चाल- (दाढी-मूछवाली) सरस्वती' का तथा भोजराज ने 'कवीश्वर' और 'सिद्धसारस्वत' का बिरुद दिया था । ये सत्यवादी और निडर वक्ता थे । इनके कुछ सुभाषितों का भावार्थ निम्न प्रकार है :-

सुभाषित

(१) शंकर के दर्शन को टालते हुए-हे भोजराज ! शंकर और पार्वती साथ बैठे हुए है । इसलिए इनके दर्शन में मुझे लज्जा आ रही है । मैं बालक होता तो अलग बात थी ।

(२) भृंगी कंकाल जैसा क्यों है ? इस प्रश्न के समाधान में कहते है- हे राजन् ! यह भृंगी सोचता है कि मेरे स्वामी शंकर यदि दिगम्बर हैं तो धनुष्य की क्या जरूरत है ? शस्त्र रखते हैं तो भस्म लगाने का क्या प्रयोजन है ? भस्म लगाते हैं तो स्त्री क्यों रखते हैं ? स्त्री रखते हैं तो कामदेव पर द्वेष क्यों करते हैं ? अपने स्वामी की इन परस्पर विरोधी चेष्टाओं से चिन्ता ही चिन्ता में बिचारा भृंगी कंकाल सा हो गया हैं ।

(३) याज्ञवल्क्यस्मृति के विषय में अपना अभिप्राय देते हुए- हे राजन् ! श्रुति में विष्टा खाने वाली गाय का स्पर्श, वृक्ष की पूजा, पशु-वध, पूर्वजों का तर्पण, ब्रह्मभोजन, अग्नि में बलि, मायावी को मानना इत्यादि धर्ममार्ग बताया है, जिसे सच्चा कैसे माना जाय ?

(४) गाय की वंदनीयता के विषय में- गाय पशु है, विष्टा खाती है, पति-पुत्र का भेद नहीं रखती है, खुरों से जीवहिंसा करती है और सींग मार देती है । ऐसी गाय को नमस्कार क्यों ? यह दूध देती है, इसलिए वंदनीय हो तो भैंस भी वंदनीय होनी चाहिए ।

कविराज की औत्पातिकी बुद्धि के कुछ उदाहरण

(१) एक बार 'सरस्वतीकंठाभरण' नामक नये महल से विद्वद्-गोष्ठी के बाद बाहर निकलते समय राजा भोज ने कहा- कविराज ! कहो कि आज मैं कौन-से दरवाजे से निकलूंगा ?

कविराज ने शीघ्र एकांत में एक भोजपत्र पर 'छत तोडकर' इतना लिखा और

भोजपत्र को संपुट में बन्द कर राजा के अंगरक्षकों को सौंप दिया।

कविराज को गलत साबित करने के लिए राजा ने ऊपर की छत तुडवाई और उससे बाहर निकल गया, किन्तु संपुट खुलवाकर कविराज के उत्तर को पढा तब राजा के आश्चर्य का पार न रहा।

(२) एक दिन राजा भोज ने कविराज को देव-पूजा का आदेश दिया। कविश्वर स्नानादि से शुद्ध होकर हाथ में पूजा की सामग्री लेकर एक के बाद एक काली, विष्णु, शिव और श्री जिनेश्वर के मन्दिरों में गये। प्रथम के तीन मन्दिरों से पूजा किये बिना ही उदास लौटे और चौथे जिनमन्दिर में पूजा कर प्रसन्न वदन बहार आये।

राजा ने गुप्तचरों द्वारा इस घटना को जानकर कविराज से पूछा- कहो किस किस की पूजा की ?

कविराज ने नि:संकोच कहा- महाराज ! मैं प्रथम महाकाली के मन्दिर में गया तो वहाँ देवी महिषासुर के वध में व्यस्त थी। उसके हाथ में कपाल (खोपडी) था और शस्त्र थे, उसका चेहरा अतीव रौद्र था। यह देखकर मुझे लगा कि देवी अभी गुस्से में है। अत: इसकी पूजा करना उचित नहीं।

बाद में मैं विष्णु के मन्दिर में गया तो विष्णु के साथ सत्यभामा, रुक्मिणी वगैरह बैठी थी और रास-लीला चल रही थी। इसलिए मुझे लगा कि एकान्त में रहे हुए देव के पास मुझे और दूसरे किसी को भी जाना उचित नहीं। अत: पर्दा डालकर में वापिस लौट आया।

पश्चात् मैं शिवालय में गया। यहाँ मुझे सूझ ही नहीं पडी कि शिवजी के किस अंग को पूजू, क्योंकि जहां कंठ ही नहीं है वहाँ फूलमाला कहाँ डालूँ ? नाक ही नहीं वहाँ धूप देने का कुछ अर्थ नहीं, कान ही नहीं वहाँ गीत किसे सुनाऊँ ? और पाँव ही नहीं तो प्रणाम किसे करूँ ? अत: पूजा कैसे करूँ ?

बाद में मैं जिनालय में गया। वहाँ वीतराग की सौम्य मूर्ति के दर्शन हुए, आँखों से अमृत बरस रहा था, मुख प्रसन्न था, गोद स्त्रीसंग से शून्य थी और हाथ शस्त्र से रहित थे। वहाँ सच्चा देवत्व देखकर मैंने देवाधिदेव की पूजा की। मुझे वहां अतिशय शान्ति मिली।

कविराज के उत्तर से राजा भोज भौंचक्का रह गया।

(३) एक बार राजा ने कहा- कविवर ! महाकाली के मन्दिर में पवित्रारोह का महोत्सव होता है। तुम्हारे देव का ऐसा महोत्सव क्यों नहीं होता ? धनपाल ने उत्तर दिया- हे राजन! पवित्रारोह तो जो अपवित्र है उसे पवित्र करने के लिए होता है। जबकि श्री जिनेश्वर देव तो सदा पवित्र है, उन्हें पवित्र करने की कोई जरुरत नहीं।

कवि धनपाल ने आत्मकल्याण के लिये धारा में ही भगवान् श्री आदीश्वर का मनोहर मन्दिर बनवाया, जिसकी प्रतिष्ठा आ० श्री महेन्द्रसूरि से करवाई और वहाँ निरन्तर पूजा चालू रखी। भगवान् की स्तुतिरूप 'ऋषभपंचाशिका' भी रची। इसी समय कविराज ने भगवान् ऋषभदेव की स्तुतिप्रधान गद्यकथा बारह हजार श्लोक प्रमाण रची, जिसका संशोधन आ० श्री शान्तिसूरि (वादिवैताल) से करवाया। सर्दी की रात्रियों में कविराज ने इस ग्रन्थ को पढकर राजा भोज को सुनाया, जिसके काव्य-लालित्य से राजा अत्यन्त प्रसन्न हुआ और कहने लगा- हे मित्र ! मेरी एक माँग है कि इस कथा में 'जिन' के स्थान पर 'शिव' 'अयोध्या' के स्थान पर 'अवन्ती' (धारा), 'शक्रावतार चैत्य' के स्थान पर 'महाकाल मन्दिर', 'ऋषभदेव' के स्थान पर 'महादेव' और 'इन्द्र' के स्थान पर 'भोज' इतना परिवर्तन कर दें, मैं मुँह मांगा पारितोषिक दूंगा। इतना ही नहीं, तुम्हारी यह कथा अमर बन जायगी, इसमें तनिक भी शंका मत रखो।

कविराज ने उत्तर दिया- हे राजन् ! यह परिवर्तन करना तो मेरे मन बडा अपराध होगा। दूसरे शब्दों में कहूँ तो यह मेरी आत्म-हत्या होगी। दूध के भाजन में शराब की बूंद भी गिर जाय तो पूरा भाजन अपवित्र हो जाता है। सूर्य और जुगनू में जो अन्तर है वह सदा के लिए अमिट है।

राजा को इस नग्न सत्य से बडा गुस्सा आया और उसने कथाग्रन्थ को जलती हुई सिगडी में फेंक कर जला दिया। कविराज को इस प्रसंग से तीव्र आघात लगा और दु:खी दिल से घर आकर वह शय्या में लेट गये। कविराज की नौ वर्ष की नन्हीं पुत्री तिलकमंजरी अपने पिता की विह्वलता को भाँप गई और कारण पूछने लगी। कविराज ने राजमहल की घटना को दुहराया, तब तिलकमंजरी अपने पिता को आश्वासन देते हुए बोली- पिताजी ! आप जरा भी चिन्ता न करें, मुझे कथा अक्षरश: याद है।

पुत्री की इस बात को सुनकर कवि के आश्चर्य और आनन्द का पार न रहा कुछ ही समय में कविराज ने बालिका के मुख से सुनकर पूरा ग्रन्थ लिख लिया और ग्रन्थ का नाम 'तिलकमंजरी' रखा ।

इस घटना के बाद कविराज धारा छोडकर साचोर में आकर रहने लगे। कविराज ने 'पाइयलच्छीनाममाला' 'धनञ्जय कोश', 'शोभनकृत चतुर्विंशतिजिन स्तुति' की टीका, 'सावगघम्मपगरण', 'वीरथुई,' 'वीरस्तुति' आदि ग्रन्थों की भी रचना की। कविराज का समय अनुमानत: वि.सं. १०१० से १०९० है।

मलधारी आचार्य श्री अभयदेवसूरि

हर्षपुरीय गच्छ के आ० श्री विजयसिंहसूरि के आप शिष्य थे ।। विद्वान् होने के साथ-साथ आप निरन्तर बेले-तेले (छट्ठ-अट्ठम) का तप करते थे । जीवन भर आपको पांच विगई का त्याग था । चक्रेश्वरी देवी का आपको सान्निध्य था । आप स्वयं परम शान्त थे और आपके दर्शन मात्र से दर्शक शान्ति का अनुभव करते थे । अनेक राजा महाराजा आपसे प्रभावित थे । बहुत से मन्त्री तो शिष्य की तरह आपके भक्त थे ।

गुजरात के राजा कर्णदेव ने आपके शरीर और वस्त्रों को अतीव मलीन देखकर आपकी नि:स्पृहता से प्रभावित हो कर आपको 'मलधारी' का बिरुद दिया था । आ० श्री गोविंदसूरि के विद्वान् विद्या-शिष्य आ० श्री वीराचार्य ने आपको सूरिमन्त्र दिया था, जिसकी आराधना से आपका प्रभाव दिन दुगुणा और रात चौगुणा बढा ।

आपके उपदेश से शाकंभरी के प्रथम राजकुमार पृथ्वीराज ने रणथंभोर के जैन मन्दिर पर सुवर्ण-कलश चढाया था तथा गुजरात के मन्त्री शान्तू ने भरुच के 'शकुनिका-विहार' जैन मन्दिर पर सुवर्ण-कलश चढाया था । ग्वालियर नरेश भुवनपाल भी आपसे प्रभावित था । एलिचपुर (महाराष्ट्र-विदर्भ) के राजा श्रीपाल ने श्रीपुर में आपसे अन्तरिक्ष पार्श्वनाथ तीर्थ की प्रतिष्ठा वि.सं. ११४२ में करवाई थी । सौराष्ट्र का राजा रा'खेंगार भी आपका भक्त था । सिद्धराज ने आपके उपदेश से अपने पूरे प्रदेश में पर्युषण पर्व, एकादशी आदि दिनों में अमारि घोषणा करवा कर पशु-वध बन्द करवाया था ।

पाटण में ४७ दिनों का अनशन कर आप वि.सं. ११६८ में स्वर्गवासी हुए।

आचार्य श्री सर्वदेवसूरि द्वितीय (३८ वें पट्टधर)

आ० श्री देवसूरि के पट्टधर आ० श्री सर्वदेवसूरि द्वितीय हुए । इन्होंने यशोभद्र नेमिचन्द्र आदि शिष्यों को आचार्य पद पर वि.सं. ११२९ और ११३९ के बीच प्रतिष्ठित किया ।

मलधारी आ. श्री हेमचन्द्रसूरि

मलधारी आ० श्री अभयदेवसूरि के शिष्य आ० श्री हेमचन्द्रसूरि हुए । ये पूर्वपर्याय से महामन्त्री प्रद्युम्न थे । आ० श्री अभयदेवसूरि के उपदेश से मन्त्रिपद का त्याग कर साधु पद का स्वीकार किया । शास्त्रों का अध्ययन कर आप आचार्य पद पर आरुढ हुए ।

राजा सिद्धराज जयसिंह आपका परम भक्त था । आपके उपदेश से इस राजा ने अनेक जिनमन्दिरों पर सुवर्ण-कलश चढाये और प्रतिवर्ष ८० दिनों का अमारि प्रवर्तन करवाया था ।

आपकी ग्रन्थरचनाएँ निम्न लिखित है -

आवश्यक-टिप्पणक, शतक कर्मग्रन्थ विवरण, अनुयोगद्वार सूत्रविवरण, उपदेशमाला=पुष्पमालाप्रकरणमूल स्वोपज्ञवृत्तिसहित, जीवसमासविवरण वि.सं. ११६४ में, भवभावनामूल और स्वोपज्ञवृत्ति, नन्दिसूत्र टिप्पण और विशेषावश्यक बृहद्वृत्ति ।

पाटण में सात दिन का अनशन कर आप स्वर्गवासी हुए । आपके अनेक शिष्य हुए । उनमें से (१) आ० श्री विजयसिंहसूरि ने वि.सं. ११९१ में आ० श्री कृष्णर्षि के शिष्य आ० श्री जयसिंह रचित 'धर्मोपदेशमाला' गाथा ९८ का विवरणग्रन्थ १४४७१ श्लोकप्रमाण रचा । (२-३) आ० श्री चन्द्रसूरि और आ० श्री विबुधचन्द्रसूरि ये दोनों पूर्व पर्याय से सिद्धराज जयसिंह के लाट देश के मन्त्री थे । (४) प० लक्ष्मणगणी ने वि.सं. ११९९ में 'सुपासनाहचरियं' १०००० गाथा प्रमाण रचा ।

दण्डनायक जिनहाक्

धोलका निवासी जिनहाक् निर्धन किन्तु बलवान् था। टीकाकार आ० श्री अभयदेवसूरि के उपदेशानुसार नित्य प्रभु पार्श्वनाथ की पूजा, गुरुवंदन और भक्तामर-स्तोत्र का पाठ करता था। घी और कपास का मामूली धंधा था। इसी निमित्त धोलका से पाटण जाना आना होता था।

एक बार रास्ते में तीन कुख्यात डाकुओं का मुकाबला हुआ जिसमें इसने अकेले ने तीनों को मार डाला। राजा भीमदेव (वि.सं. १०७८-११२०) ने यह वृत्तांत सुना तब राजसभा में इसका बडा सन्मान किया और इसे धोलका का दण्डनायक नियुक्त किया।

उसने सर्वप्रथम सभी चोरों और डाकुओं को गिरफ्तार किया और अपने प्रदेश को निर्भय बना दिया। प्रदेश भर में उसके नाम की बडी धाक जम गई।

सिर पर बोझा ढोने वाले मजदूरों का शुल्क माफ किया। एक गाँव से दूसरे गाँव जाने वाले रास्तों पर जगह-जगह मजदूरों को विश्रांति के लिए चबूतरे बनवाये।

धोलका में दो जिनमन्दिर बनवाये। अपने गृहमन्दिर में भगवान् पार्श्वनाथ की कसौटी की प्रतिमा तथा संघ के मन्दिर में भगवान् आदीश्वर, गोमुख यक्ष और चक्रेश्वरी देवी की प्रतिमाएँ तैयार करवाकर आ० श्री अभयदेवसूरि से अंजनशलाका और प्रतिष्ठा करवाई।

आचार्य श्री यशोभद्रसूरि एवं आ. श्री नेमिचन्द्रसूरि (३९ वें पट्टधर)

आ. श्री सर्वदेवसूरि द्वितीय के पट्ट पर आ. श्री यशोभद्रसूरि और आ.श्री नेमिचन्द्रसूरि हुए। इनमें आ.श्री यशोभद्रसूरि की विद्यमानता वि.सं. ११४८ तक अनुमानित है।

आ. श्री नेमिचन्द्रसूरि ने आचार्य पद प्राप्त करने से पूर्व और पश्चात् अनेक ग्रन्थ रचे हैं, जिनके नाम निम्नलिखित है -

(१) रयणचूड-तिलयसुंदरी कहा, (२) उत्तराध्ययन लघुवृत्ति (३) आख्यान-मणि कोश, (४) महावीरचरियं और (५) प्रवचनसारोद्धार मूल ।

अन्तरिक्ष पार्श्वनाथ तीर्थ स्थापना

रामायणकालीन बाली और सुमाली द्वारा वालुका से निर्मित भगवान् पार्श्वनाथ की प्रतिमा विदर्भ के किसी सरोवर में सरोवर के अधिष्ठायक देव द्वारा पूजी जाती थी ।

एलिचपुर का राजा कुष्ठ रोग के कारण राज्य त्याग कर जंगल में सपरिवार रहने लगा । उसने एक संध्या को सरोवर के जल से हाथ-पाँव धोये और जल-पान किया । रात्रि को बडा आराम रहा । सुबह देखा तो रोग शान्त हो गया था । उसी दिन दिव्य संकेत भी हुआ, तदनुसार राजा ने सरोवर में से प्रतिमा निकलवाई और उसे रथ में लेकर अपने नगर को चला । नियतिवश बीच रास्ते में प्रतिमा आकाश में स्थिर हो गई । वहीं मन्दिर बना, जिसकी प्रतिष्ठा मलधारी आ.श्री अभयदेवसूरि ने वि.सं. ११४२ में की ।

आ. श्री जिनवल्लभ सूरि

कूर्चपुरगच्छीय चैत्यवासी आ. श्री जिनेश्वरसूरि के शिष्य श्री जिनवल्लभ हुए । इन्होंने चितौड में छः कल्याणक की प्ररूपणा की । श्री देवभद्राचार्य ने इनको वि.सं ११६७ में आचार्य पद दिया । इन्होंने 'पिण्डविशुद्धिप्रकरण', गणधर सार्धशतक, षडशीति वगैरह ग्रन्थों की रचना की । नवांगी टीकाकार आ.श्री. अभयदेवसूरि के आप विद्या-शिष्य हुए । आपने वि.सं. ११२५ में आ.श्री. जिनचन्द्रसूरि द्वारा रचित 'संवेगरंगशाला' का संशोधन किया था ।

आचार्य श्री मुनिचन्द्रसूरि (४० वें पट्टधर)

आ.श्री यशोभद्रसूरि और आ.श्री नेमिचन्द्रसूरि के पट्ट पर आ.श्री मुनिचन्द्रसूरि हुए । आपका जन्म डभोई (गुजरात) में हुआ । आ. श्री यशोभद्रसूरि से आपने दीक्षा ली । दीक्षा दिन से छः विगई का त्याग जीवन भर रखा । सिर्फ १२ द्रव्य आहार में रखे । सौवीर (कांजी) का पान करते थे अतः आप सौवीरपायी

कहलाते थे। आप ने उपाध्याय विनयचन्द्र से आगम शास्त्र पढे। वादिवैताल आ. श्री शान्तिसूरि से आपने षड् दर्शन का अध्ययन किया।

'वि.सं. ११४९ में वड गच्छ से अलग होकर आ. चन्द्रप्रभसूरि ने वि.सं. ११५९ में 'पूनमिया' मत चलाया, जिसके सामने आपने 'आवस्स्य सत्तरि' ग्रन्थ की रचना कर संघ को सन्मार्ग बताया। अन्य ग्रन्थों की भी रचना की जिनमें से कुछ के नाम निम्नलिखित है -

(१) अंगुलसत्तरि स्वोपज्ञवृत्ति सहित, (२) वणस्सई सत्तरि, (३) उवएसपद टीका, (४) धर्मबिन्दु टीका, (५) ललितविस्तरा पंजिका, (६) कम्मपयडी टिप्पण (७) अनेकांतजयपताकोद्द्योतदीपिका टिप्पण वगैरह आपके पच्चीस से अधिक ग्रन्थ आज भी मिल रहे हैं।

पाटण में वि.सं. ११७८ में आप स्वर्गवासी हुए।

आ. श्री चन्द्रसूरि

नागेन्द्र गच्छ के आ. श्री रामसूरि के शिष्य आ.श्री चन्द्रसूरि हुए। ये प्रकाण्ड विद्वान् और वक्ता थे। इनके प्रवचनों से अनेक भव्य आत्माएँ प्रतिबोधित हुई। वि.सं. ११७२ से ११८० तक आपने (१) पंचाशकचूर्णि, (२) ईर्यापथिकीचूर्णि, (३) चैत्यवंदनचूर्णि (४) वंदनचूर्णि (५) पिण्डविशुद्धि (६) पक्खीसूत्रवृत्ति आदि अनेक ग्रन्थों की रचना की।

आ. श्री वादीदेवसूरि (४१ वें पट्टधर)

आ. श्री मुनिचन्द्रसूरि के पट्टधर आ. श्री देवसूरि हुए। इनका जन्म वि.सं. ११४३ में मंडार (जि. सिरोही-राज.) में हुआ था। दीक्षा वि.सं. ११५२ में हुई। धोलका, नागौर, सांचौर, चित्तौड, ग्वालियर, धारा, पुष्करिणी, भरुच आदि अनेक स्थानों में आपने वाद में विजयी बनकर वादी की ख्याति प्राप्त की। वि.सं. ११७४ में आप आचार्य पद से अलङ्कृत हुए। वादों में सदा अजेय रहने से 'अजितदेवसूरि' के नाम से भी आप प्रसिद्ध हुए।

आबू पर्वत पर चढते समय किसी राजपुरुष को सर्प ने दंश दे दिया था जिसका विष आपके पाद-प्रक्षालन जल से उतर गया। यहीं पर अंबिका देवी ने प्रत्यक्ष होकर आपको जतलाया कि गुरुदेव आ. श्री मुनिचन्द्रसूरि का आयुष्य सिर्फ आठ महीना शेष है, अत: आप पाटण वापिस लौटें। इसी से आप वापिस लौटे। वि.सं. ११७८ के मार्गशीर्ष कृष्णा पंचमी को विधिपूर्वक अनशन कर गुरुदेव स्वर्गवासी हुए।

इसी समय देवबोधि नाम का कोई विद्वान् पाटण में आया हुआ था। उसने एक श्लोक लिखकर सिद्धराज की सभा में रखवाया, किन्तु छ: महीने तक कोई विद्वान् उसका अर्थ न बता सका। राजा की प्रार्थना से आपने अर्थ बताया जिससे देवबोधि को आश्चर्य एवं राजा को आनन्द हुआ।

आपने पाटण की राजसभा में वि.सं. ११८१ में दिगंबराचार्य कुमुदचन्द्र को जीत कर पाटण में दिगंबरों का प्रवेश अटकाया। इस विजय से संतुष्ट होकर राजा ने बारह गाँव और एक लाख द्रव्य आपको भेंट किया परन्तु आपने स्वीकारा नहीं। अत: इस द्रव्य से राजा ने पाटण में भव्य जिनालय बनवाया जो 'राजविहार' के नाम से ख्यात हुआ। इसी विजय के उपलक्ष में सिद्धराज की प्रेरणा से आलिग मन्त्री ने सिद्धपुर में चतुर्मुख जिनप्रासाद बनवाया।

एक बार जंगल में सिंह सामने आकर खडा हो गया। आपने रेखा खींच कर उसे रोक रखा।

वि.सं. ११९१ में आपने जीरावला तीर्थ की स्थापना की।

आरासण (कुंभारिया) में भगवान् श्री नेमिनाथ की, फलवर्धि (मेडता) में भगवान् पार्श्वनाथ आदि की अनेक प्रतिष्ठाएँ आपने करवाई। ८४००० श्लोक-प्रमाण 'स्याद्‌वादरत्नाकर' नामक टीकाग्रन्थ से युक्त 'प्रमाणनयतत्त्वावलोक', 'द्वादशव्रतस्वरूप', 'कुरुकुल्लादेवी स्तुति', 'जीवाजीवाभिगम लघुवृत्ति', 'यति-दिनचर्या' आदि अनेक ग्रन्थों की रचना की। वि.सं. १२२६ में आप स्वर्गवासी हुए।

आपके अनेक शिष्यों में आ.श्री भद्रेश्वरसूरि और आ.श्री रत्नप्रभसूरि बडे विद्वान् हुए। इन दोनों ने 'स्याद्वादरत्नाकर' की रचना में आपको अपूर्व सहायता की थी।

आ.श्री रत्नप्रभसूरि ने 'उपदेशमाला' की 'दोघट्टी' टीका रची जिसका संशोधन आ.श्री भद्रेश्वरसूरि ने किया । इन्होंने ही 'प्रमाणनयतत्त्वावलोक' पर लघुवृत्ति 'रत्नाकरावतारिका' ग्रन्थ की भी रचना की ।

इसी बीच नागेन्द्रगच्छीय आ.श्री आनन्दसूरि तथा आ.श्री अमरचन्द्रसूरि हुए, जो बाल्यकाल से ही समर्थ वादी थे । इनकी वादशक्ति से प्रभावित होकर सिद्धराज जयसिंह ने इन्हें 'व्याघ्र शिशु' और 'सिंह शिशु' का बिरुद दिया था। आ.श्री अमरचन्द्र सूरि ने 'सिद्धान्तार्णव' ग्रन्थ की रचना की।

खरतर गच्छ

आ.श्री. जिनवल्लभसूरि के शिष्य आ.श्री जिनदत्तसूरि से वि.सं. १२०४ में खरतर गच्छ निकला । प० कल्याणविजयजी के मत से ये कर्कश भाषी थे अत: इनका गच्छ खरतर कहलाया । इस मत की विशेषताएँ :- छह कल्याणक, स्त्री के लिए जिनपूजा का निषेध इत्यादि हैं ।

अंचलगच्छ

आर्यरक्षितसूरि अपर नाम विजयचन्द्रसूरि से यह मत वि.सं. १२१३ में निकला । अभिवर्धित वर्ष में बीसवें दिन संवत्सरी करना, श्रावकों को मुहपत्ति न रखनी, किन्तु वस्त्र के अंचल से वंदन करना इत्यादि इस गच्छ की विशेषताएँ हैं ।

आचार्य श्री मलयगिरि

आ. श्री मलयगिरि बारहवीं शती के उत्तरार्ध में समर्थ ग्रन्थकार हुए । सरस्वती देवी से आपको वरदान प्राप्त था । रायपसेणियसुत्त, जीवाजीवाभिगमसुत्त, पन्नवणासुत्त, सूरपण्णत्ति, चंदपण्णत्ति, जंबूदीवपण्णत्ति, नंदिसूत्र, ववहारसुत्त, ज्योतिष्करण्डक, कम्मपयडी, धर्मसंग्रहणी, पंचसंग्रह, बृहत्क्षैत्रसमास, ओधनिर्युक्ति इत्यादि ग्रन्थों पर आपने संपूर्ण वृत्ति तथा बृहत्कल्पसूत्र और आवश्यकसूत्र पर आंशिक वृत्ति रची ।

कलिकालसर्वज्ञ आ. श्री हेमचन्द्रसूरि

धंधुका में माता पाहिनी की कुक्षि से 'चिन्तामणि-रत्न' के स्वप्नपूर्वक चंगदेव का जन्म वि.सं. ११४५ कार्तिकी पूर्णिमा के दिन हुआ । पूर्णतल्लगच्छ के आ.श्री देवचंद्रसूरि के पास बालक चंगदेव की दीक्षा वि.सं. ११५० में हुई और मुनि सोमचन्द्र नाम रखा गया ।

खंभात में अथवा अजारी (जि. सिरोही-राजस्थान) में सरस्वती ने प्रत्यक्ष हो कर आपको वरदान दिया । किसी श्रेष्ठी के घर की कचवरराशि आपके प्रभाव से हेम=सुवर्ण बन गई । इसी से आपका दूसरा नाम मुनि हेमचन्द्र प्रसिद्ध हुआ ।

आप वि.सं. ११६६ में आचार्य पद से अलङ्कृत हुए । सिद्धराज जयसिंह और महाराजा कुमारपाल आपके परम भक्त थे । सिद्धराज की प्रार्थना से आपने 'सिद्ध-हेम' व्याकरण शास्त्र की रचना की । महाराजा कुमारपाल आपके ही आशीर्वाद से वि.सं. ११९९ में गुजरात राज्य के अधिपति हुए और आपके उपदेश से उन्होंने वि.सं. १२०८ में 'अमारि' प्रवर्तन करवाया । वि.सं. १२१३ में आपने मन्त्री बाहड द्वारा श्री शत्रुञ्जय तीर्थोद्धार की प्रतिष्ठा करवाई ।

आपके उपदेश से पैंतीश हजार जैनेतर कुटुम्बों ने जैन धर्म स्वीकार किया था । आपकी अपूर्व विद्वत्ता और उपदेशशक्ति से प्रभावित होकर विद्वानों ने आपको 'कलिकालसर्वज्ञ' का बिरुद दिया था ।

वि.सं. १२१९ में आ० श्री रामचन्द्रसूरि को अपने पट्ट पर स्थापित कर आप स्वर्ग सिधार गये । आपकी साहित्यरचना मुख्यतया निम्न प्रकार है :-

सिद्धहेमव्याकरण मूल एवं लघु वृत्ति, बृहद्वृत्ति और बृहन्न्यास इत्यादि विवरणों सहित । अभिधानचिन्तामणिकोश, अनेकार्थ संग्रह, निघंटु कोश, देशी-नाममाला, काव्यानुशासन, छंदोनुशासन, प्रमाणमीमांसा, बलाबलवादनिर्णय, योग-शास्त्र इत्यादि मूल और इन्हीं ग्रन्थों की टीकाएँ ; द्वयाश्रय महाकाव्य, त्रिषष्टिश-लाकापुरुषचरित्र, परिशिष्ट पर्व, सकलार्हत्स्तोत्र, अयोगव्यवच्छेदिका, अन्ययोग-व्यवच्छेदिका, वीतरागस्तोत्र, महादेवस्तोत्र, द्विजवदनचपेटिका, सप्ततत्त्वविचारणा इत्यादि ।

गुरु आज्ञा के परम पालक आ.श्री रामचन्द्रसूरि

कलिकालसर्वज्ञ आ. श्री हेमचन्द्रसूरि के पट्टधर आ.श्री रामचन्द्रसूरि हुए। ये शब्दशास्त्र, काव्यशास्त्र और न्यायशास्त्र के प्रकाण्ड विद्वान् थे एवं कुमारपाल महाराजा की सभा के समर्थ कवि थे। आपको गुरुदेव ने बालचन्द्र नामक अपने कुशिष्य को आचार्य पद देने का इन्कार किया था।

कुमारपाल महाराजा के स्वर्गवास के पश्चात् वि.सं. १२३० में अजयपाल सोलंकी गुजरात का राजा हुआ, तब बालचन्द्र से प्रेरित होकर उसने आ.श्री रामचन्द्रसूरि से कहा- आप बालचन्द्र को आचार्य पद प्रदान करें। आपने स्पष्ट शब्दों में उत्तर दिया- ऐसा करना गुरु-आज्ञा से विरुद्ध है ऐसा न हो सकेगा। तब राजाने कहा- यह मेरी आज्ञा है और आप इसका पालन करें, अन्यथा राजाज्ञा-भंग के दंड रूप आप तपाए गए तांबे के पाट पर बैठ जावें।

आप श्री ने गुरु-आज्ञा-पालन के लिए 'जगत्प्रकाशक सूर्य भी शाम होने पर डूब जाता है, अत: जो नियत है वह हो कर ही रहता है' कहते कहते आपने बलिदान दे दिया। अन्त में बालचन्द्र को भी गुरुद्रोही और गच्छद्रोही ठहराकर अजयपाल ने मरवा डाला। आपकी ग्रन्थरचना निम्न प्रकार है- द्रव्यालङ्कार और नाट्यदर्पणविधि स्वोपज्ञवृत्तिसहित, सत्यहरिशचन्द्र-नलविलास कौमुदीमित्रानन्द-राघवविलास-यदुविलास-निर्भयभीमव्यायोग इत्यादि नाटक, रोहिणीमृगांक प्रकरण, वनमाली नाटिका, सुधाकलश-सुभाषित कोश, हैमबृहद्-वृत्तिन्यास, ऋषभ-व्यतिरेक-प्रसादअपह्नुति-अर्थान्तरन्यास-जिनस्तुति-दृष्टान्त-गर्भा जिनस्तुतिशान्ति-भक्ति-नेमि-मुनिसुव्रत इत्यादि द्वात्रिंशिकाएँ, स्तोत्र और अनेक प्रशस्ति ग्रन्थ।

परमार्हत महाराजा कुमारपाल

पिता त्रिभुवनपाल और काश्मीरा देवी से वि.सं. ११५० में कुमारपाल का जन्म हुआ।

नि:संतान सिद्धराज ने वि.सं. ११७५ में भविष्यवेत्ताओं से जाना कि स्वयं को संतान न होगी और राज्य का उत्तराधिकारी कुमारपाल होगा। तब पूर्व जन्म के वैर से सिद्धराज ने कुमारपाल की हत्या करवानी चाही।

कुमारपाल सिद्धराज की इस दुर्भावना को भाँप कर परदेश चला गया। अज्ञात रूप से चौबीस वर्ष बिताये। अन्त में वि.सं. ११९९ में सिद्धराज परलोकवासी हुआ तब कलिकालसर्वज्ञ आ. हेमचन्द्रसूरि के आशीर्वाद से कुमारपाल गुजरात की राजगद्दी पर आया।

कुमारपाल ने अपने राज्यकाल में अनेक देशों पर विजय पाई और राज्य का खूब विस्तार किया। बडी उम्र होते हुए भी व्याकरण, काव्य, कोश आदि का अध्ययन कर 'आत्मनिंदाद्वात्रिंशिका' ग्रन्थ की रचना की।

आचार्य श्री हेमचन्द्रसूरि के उपदेश से कुमारपाल ने मांस, मद्य सेवन आदि सात महाव्यसनों का त्याग किया, वि.सं. १२०८ में सदा के लिए 'अमारि' का प्रवर्तन करवाया और वि.सं. १२१६ में जैन श्रावक के व्रतों को ग्रहण किया। जैन धर्म स्वीकारने के बाद चौदह वर्ष में चौदह करोड सुवर्णमुद्राओं का व्यय साधर्मिक भक्ति में किया। निःसंतान मृतक के धन के ग्रहण का निषेध किया। २१ ज्ञानभण्डारों का लिखवाना, सात बार तीर्थयात्राएँ, त्रिभुवनविहार-कुमारपाल विहार आदि १४४४ नये मन्दिरों का बनवाना, १६०० मन्दिरों का जीर्णोद्धार, वि.सं. १२२६ में शत्रुञ्जय तीर्थ का 'छ'री पालित संघ इत्यादि कुमारपाल के शासन प्रभावना और आराधना के कार्य है।

वि.सं. १२२९ में कुमारपाल स्वर्गवासी हुए।

राजा अजयपाल

कुमारपाल के बाद उनका भतीजा अजयपाल राजगद्दी पर आया। वह अयोग्य था। वह कुमारपाल द्वारा नव निर्मित और जीर्णोद्धार मन्दिरों को तोडने लगा, कपर्दी मन्त्री को एक दिन के लिए महामात्य बनाकर तपे हुए तैल की कढाही में भुनवा दिया, मंत्री बाहड को भी मरवा डाला, आ. श्री रामचन्द्रसूरि को तपे हुए तांबे के पाट पर बैठाकर मार डाला, ग्रन्थभण्डारों को जला दिया। इत्यादि कुकृत्यों द्वारा पाप से भारी होकर अल्पकाल में ही वि.सं. १२३२ में कुत्ते की मौत मरकर नरक का अतिथि हुआ।

राजा बाल-मूलराज

अजयपाल की मृत्यु के बाद उसके पुत्र मूलराज का बाल्यावस्था में ही राज्याभिषेक हुआ। मुहम्मद गौरी ने गजनी से मुलतान (सिन्ध) हो कर वि.सं. १२३४ में गुजरात पर आक्रमण किया। दोनों सैन्य आबू पर्वत के नीचे बनास नदी के किनारे गाडर घाट में आमने सामने आ गये। मन्त्री सज्जन की सूझ और सलाह से रानी नायकी ने बाल मूलराज को अपनी गोद में लेकर किसी ऊँचे स्थान से युद्ध की बागडोर सम्हाली। गौरी को हार खाकर सन्धि कर गजनी वापिस लौटना पडा। इसके तुरन्त बाद मूलराज की मृत्यु हो गई और उसका छोटा भाई भीमदेव (भोला) राजगद्दी पर आया। इसके राज्यकाल (वि.सं. १२३५ से १२९८) में काफी अराजकता फैल गई थी और अनेक सामन्त राजा स्वतंत्र हो गये थे।

पृथ्वीराज चौहान

अजमेर का राजा सोमेश्वर चौहाण वि.सं. १२२६ में गुजरात के साथ किये गये युद्ध में मारा गया। उसके बाद उसका पुत्र पृथ्वीराज चौहाण राजगद्दी पर आया यह बडा पराक्रमी था। इसने वि.सं. १२४७ (ई.स. ११९१) में तराईन के मैदान में मुहम्मद गौरी की सेना को परास्त किया। बाद में कन्नोज के जयचन्द की सहायता से वि.सं. १२४९ में गौरी विजयी हुआ और सदा के लिए हिन्दू साम्राज्य अस्त हुआ। गौरी के बाद तुर्क सुल्तान बने। इनमें कुछ दास थे तो कुछ दासों की सन्तान थे। पृथ्वीराज के बाद चौहाणो की शाखाओं ने १०० वर्ष तक तुर्को का मुकाबला किया। अन्त में अलाउद्दीन खिलजी ने इनका दमन किया।

राजा मुंज

मालवराजा मुंज (वि.सं. १०३१ से १०५२) का दूसरा नाम वाक्पतिराज था। यह अत्यन्त रूपवान् था। राजा सीयक को यह शिशु अवस्था में मुंज नाम के घास में मिला था। अतः इसका नाम मुंज रखा था और राजगद्दी इसे दी थी। सीयक ने अपने सच्चे पुत्र सिन्धुराज को युवराज बनाया था।

मुंज युद्धकुशल था । इसने मेवाड के राजा खुमाण (शक्तिवाहन) को हराया था । तिलंग पर भी आक्रमण किया, किन्तु वहाँ के राजा तैलप ने इसे हरा दिया और कैद कर दिया । मालव के मन्त्रियों ने उसे मुक्त कराने हेतु सुरंग का रास्ता तैयार करवाया, किन्तु जैल में मुंज एक रूपसुन्दरी मृणालिका के प्रेम में फँस गया था । राजा तैलप ने मृणालिका से सुरंग की बात जान ली तब मुंज को जैल में कठोर यातनाएँ देकर मरवा डाला ।

राजा भोज

मुंज के बाद सीयक का पौत्र और सिंधुल का पुत्र भोज मालव की राजगद्दी पर आया । यह शूर, विद्वान् और दानी था । एक बार गुजरात पर आक्रमण करने के लिए प्रयाण किया, परन्तु बीच ही गुजरात के सन्धिपाल दामोदर की चतुराई से युद्ध की दिशा बदल कर तिलंग का रास्ता लिया ।

राजा भोज की सभा में कविराज धनपाल, आ.श्री महेन्द्रसूरि, शोभन मुनि, आ.श्री चन्दनाचार्य, आ. श्री सूराचार्य, आ. श्री वादिवेताल शान्तिसूरि आदि ने अच्छा प्रभाव डाला था । राजा भोज आ. श्री अजितसेनसूरि के शिष्य आ.श्री जिनेश्वरसूरि का भक्त था ।

इसी समय नीलपट नाम का एक शैव मत निकला था, जिसमें वामपंथ की मुख्यता थी । राजा भोज ने इस मत का उच्छेद किया ।

वि.सं. ११११ में काशीराज कर्णदेव ने कर्णाटक के राजा सोमेश्वर और गुजरात के राजा भीमदेव को साथ लेकर धारा पर धावा बोल दिया । इससे राजा भोज का दिल टूट गया और अन्त में मरण के शरण हुआ । धारा नष्ट हो गई तथा बाद में मांडवगढ मालवा की राजधानी बनी ।

राजा नरवर्मा

राजा भोज के बाद सिन्धुराज का दूसरा पुत्र जयसिंह (वि.सं. ११११ से १११६) राजा बना । उसके बाद सिन्धुराज का तीसरा पुत्र उदयादित्य (वि.सं. १११६ -११४३) राजगद्दी पर आया । उदयादित्य के बाद उसका पुत्र लक्ष्मदेव (वि.सं. ११४३-११६०) मालवा का राजा हुआ । लक्ष्मदेव के बाद उसका छोटा भाई नरवर्मा (वि.सं. ११६१-११९०) राजगद्दी पर आया । यह विद्वान् था । राजगच्छ के

आ. श्री धर्मघोष, आ. श्री समुद्रघोष आदि के प्रति यह बहुमान रखता था । बाद में यशोवर्मा (वि.सं. ११९०-९२) के काल में मालवा पर गुजरात की विजय हुई ।

महामन्त्री शान्तू

शान्तू राजा भीमदेव (वि.सं. १०७८-११२०) के राज्यकाल में प्रथम पांच हजार घुडसवारों के सेनापति बने । बाद में कर्णदेव और सिद्धराज के राज्यकाल में क्रमशः मंत्री, दंडनायक और महामंत्री बने । महामंत्री ने अनेक मन्दिर, उपाश्रय आदि बनवाये । मलधारी आ. श्री हेमचन्द्रसूरि के उपदेश से भरुच के शकुनिका-विहार पर स्वर्ण-कलश चढाया ।

धर्म में स्थिरीकरण

मंत्री एक बार हाथिनी पर बैठकर शान्तू-वसही के मन्दिर में दर्शन करने आये । तब वहाँ एक चैत्यवासी साधु वेश्या के कन्धे पर हाथ रखकर खडा था । मन्त्री ने उसे विधिपूर्वक वन्दन किया । इससे वह साधु अत्यन्त लज्जित हुआ । उसकी आत्मा में वैराग्य जागा और मलधारी आ. श्री हेमचन्द्रसूरि के पास फिर से दीक्षा ली । दीक्षा के बाद शत्रुंजय तीर्थ में जाकर कठिन तप करने लगे । बारह वर्ष बीत गये ।

मंत्रिराज एक बार यात्रा करने शत्रुंजय तीर्थ गये । वहाँ इन तपस्वी साधु के दर्शन किये, किन्तु पहिचान न सके । अतः इनसे गुरु का नाम पूछा । तपस्वी साधुने कहा- मेरे सच्चे गुरु महामन्त्री शान्तू हैं । मन्त्रिराज ने हिचकते हुए कहा- आप ऐसा क्यों फरमाते हैं ? तपस्वी साधु ने बीते वृत्तान्त की स्पष्टता की । मन्त्रिराज आश्चर्य एवं आनन्द का अनुभव करने लगे और धर्म में अधिक स्थिर हुए ।

गुरु-मुख से प्रशंसा

महामन्त्री शान्तू पराक्रमी, चतुर, राजनीतिज्ञ और धर्मप्रेमी थे । मन्त्रिराज ने ८४००० सुवर्ण सिक्कों का व्यय कर आलीशान मकान बनवाया था । सभी दर्शक मकान की प्रशंसा करते थकते नहीं थे । एक बार महामंत्री ने आ. श्री वादिदेवसूरि को शिष्य-परिवार सहित अपने घर आमंत्रित किया और प्रशंसा पाने के आशय से पूरा मकान बताया । आचार्य श्री पूरी तरह मौन रहे । मन्त्री

महोदय रह नहीं सके और कहने लगे- सभी मकान को देखकर प्रशंसा के फूल बिखेरते हैं, किन्तु आप कुछ कहते ही नहीं । आचार्य श्री के शिष्य मुनि माणिक्य ने कहा - यह तो गृहस्थ का घर है, अनेक तरह के आरंभ समारंभ का धाम है, तो आचार्य श्री इसकी प्रशंसा कैसे करें ? हाँ यदि पौषधशाला बनवाई होती तो उसकी उचित प्रशंसा आचार्य श्री अवश्य करते । इतना सुनते ही शान्तू बोल उठे- 'आज से यह मकान पौषधशाला में परिवर्तित है' कहकर मकान को पौषघशाला के रूप में समर्पित कर दिया और प्रवेशद्वार की दोनों दीवारों पर पुरुष प्रमाण दो बडे शीशे टंगवा दिये जिनमें आराधक लोग आराधना के पश्चात् अपना मुख देखकर पौषधशाला से बाहर निकलते थे ।

मालव-विजय के बाद वि.सं. ११९५ के करीब मेवाड के आयड (आघाटपुर) में अनशन कर मन्त्रिराज स्वर्ग सिधार गये ।

महामात्य मुंजाल

मुंजाल राजा कर्णदेव (वि.सं. ११२०-११५०) के राज्यकाल में महामात्य थे । एक बार कर्णदेव कोई नीच स्त्री पर मोहित हो गया और एकांत में मिलने का उसे संकेत किया । मुंजाल ने उस स्त्री के स्थान पर अपमानित महारानी मीनलदेवी को भेज दिया । मीनलदेवी से सिद्धराज जयसिंह का जन्म हुआ । सिद्धराज के मालव-विजय में मुंजाल का बुद्धिकौशल मुख्य था ।

मुंजाल ने 'मुंजालवसही' उपाश्रय आदि धर्म के कार्य किये ।

महामात्य उदयन मेहता

उदयन जालौर जिले के बागरा गाँव के निवासी थे । वह व्यवसाय हेतु गुजरात की कर्णावती नगरी में जा बसे । यहाँ शालापति त्रिभुवनसिंह की पत्नी लच्छी के साधर्मिक वात्सल्य से उदयन के भाग्य का सितारा चमक उठा । कुछ ही काल में यह नगरशेठ बन गये । सिद्धराज के मंत्री बने । (जूनागढ के रा'खेंगार को मारने के बाद ये 'राणक' की उपाधि से प्रसिद्ध हुए । और अंत में सिद्धराज ने इनको खंभात दंडनायक नियुक्त किया । वि.सं. ११५० में खंभात में कलिका-लसर्वज्ञ आ. श्री हेमचन्द्रसूरि को इन्होंने दीक्षा दिलवाई ।

सिद्धराज के बाद कुमारपाल ने भी उदयन को खंभात के दंडनायक पद पर

नियत रखा एवं उनके पुत्र बाहड और अंबड को क्रमशः अपना महामात्य और दंडनायक बनाया। कुमारपाल ने सौराष्ट्र के उद्धत विद्रोही सुंवर को शिक्षा देने हेतु वृद्ध मंत्री उदयन को अपने छोटे भाई कीर्तिपाल और नाडोल के राजा आल्हण चौहाण आदि के साथ भेजा।

बीच रास्ते में शत्रुंजय तीर्थ यात्रा करते समय उदयन ने लकडे के मूल मन्दिर को कभी भी आग लगने की आशंका से उसका उद्धार कर पाषाण का मन्दिर बनवाने की प्रतिज्ञा की। बाद में मन्त्रीने युद्ध में सुंवर को जीत लिया, किन्तु स्वयं घायल हो जाने से तथा वृद्धावस्था के कारण अशक्त हो जाने से सैन्य के साथ वढवाण की छावनी में आ पहुँचे। मन्त्रिराज को लगा कि आयुष्य अल्प है। अतः राजभ्राता कीर्तिपाल और अन्य सामंतों को बुलवाकर कहा- अब मेरे जीने की संभावना कम है। अतः मैंने जो प्रतिज्ञा की है उसे मेरे पुत्रों को पूरी करनी है। यह संदेश मेरे पुत्र बाहड, अंबड वगैरह को पहुँचाना। दूसरी इच्छा यह है कि कोई मुनिराज आकर मुझे अंतिम आराधना करावें। कीर्तिपाल वगैरह ने कहा- महामात्य ! आप चिन्ता न करें। आपका यह संदेश आपके पुत्रों को पहुँचा देंगे और वे आपकी प्रतिज्ञा को अवश्य पूरी करेंगे। इतना ही नहीं, हम भी इस कार्य में पूरा सहयोग देंगे।

महामात्य की इच्छानुसार कोई मुनिराज तत्काल आ सकें, ऐसा संभव नहीं था। अतः सामंतों ने एक युवान बहुरूपी को जैन साधु का वेष पहिना कर कुछ शिक्षा दी और महामात्य के समीप उपस्थित कर दिया। महामात्य उदयन ने उसे नमस्कार किया और स्वयं दश प्रकार की अंतिम आराधना कर हँसते मुँह वि.सं. १२०७-८ में स्वर्ग सिधार गये।

वेषपरिवर्तन से भावपरिवर्तन

दूसरी तरफ उस बहुरूपी युवान को विचार सूझा कि मेरे जैसा सामान्य मनुष्य भी जैन साधु का वेष पहिनने मात्र से महामात्य का भी पूज्य बना तो अब यदि सच्चा साधु बन जाऊँ तो मुझे कितना लाभ होगा। मेरा आत्मकल्याण होगा। इस विचार ने उसे सच्चा साधु बना दिया। वह भाव साधु बना। उसने शुद्ध संयम को पाला। अन्त में गिरनार तीर्थ में जाकर अनशन किया और वह स्वर्गवासी हुआ।

मन्त्री उदयन के चार पुत्र थे - (१) अंबड, (२) बाहड, (३) चाहड और (४) सोल्लाक ।

मन्त्री अंबड

महामात्य उदयन का बडा पुत्र अंबड भी महामात्य और दंडनायक बना । यह कवि, पराक्रमी और दानी था । अपने पिता की प्रतिज्ञानुसार शत्रुंजय तीर्थ और भरुच के शकुनिका-बिहार का उद्धार करवाया ।

वि.सं. १२१७ में दूसरी बार आक्रमण कर कोंकण के राजा मल्लिकार्जुन का मस्तक, चार दांत वाला एक हाथी, मणिमाणिक, सोना चांदी इत्यादि लेकर पाटण लौटा तब कुमारपाल राजा ने इसे 'महामंडलेश्वर' तथा 'राजपितामह' का बिरुद दिया था ।

मन्त्रिराज ने अनेक मन्दिर बनवाए और जिनप्रतिमाएँ निर्मित कराई । कुमार-पाल की मृत्यु के बाद अजयपाल ने अंबड को मारने के लिए सैन्य भेजा । अंबड ने भी समय पहिचान कर तीर्थंकर परमात्मा की पूजा की और अनशन स्वीकारा । बाद में अपने आदमियों के साथ घर से बाहर निकलकर सैन्य का मुकाबला करते-करते घटीधर तक पहुँचा और वहीं प्राण त्याग दिये ।

मन्त्री बाहड

उदयन का दूसरा पुत्र बाहड था । यह सिद्धराज का मन्त्री और कुमारपाल का महामात्य एवं राणक बना ।

बाहड ने शत्रुंजय मन्दिर तय्यार हो जाने के समाचार लाने वाले को प्रीतिदान में १६ चांदी की जीभें दी थी । दूसरे दिन उसी मन्दिर के गिर पडने के समाचार लाने वाले को ३२ चांदी की जीभें दी । इस विषय में स्पष्टता करते कहा कि मेरी उपस्थिति में मन्दिर गिर पडने के समाचार मिलने से मैं इसे फिर बना सकूंगा, किन्तु मृत्यु के बाद यह मन्दिर नष्ट होता तो वापिस कब बनता, कौन जाने । मन्दिर का पुनः निर्माण करवाया और इस चौदहवें उद्धार की प्रतिष्ठा वि.सं. १२१३ में कलिकालसर्वज्ञ आ. श्री हेमचन्द्रसूरि से करवाई ।

मन्त्री चाहड

उदयन का तीसरा पुत्र चाहड था । यह बडा पराक्रमी था । इसे 'राजघरट्ट' का बिरुद था और यह मालवा का दंडनायक था ।

मन्त्री सोल्लाक

उदयन का चौथा पुत्र सोल्लाक था । इसे 'सामंतमंडली-सत्रागार' का बिरुद था ।

मंत्री सज्जन

सज्जन जैन था । नित्य पूजा, प्रतिक्रमण करता था । युद्ध के मैदान में भी अपने नित्य कर्तव्यों को निभाता था । सज्जन की नैतिकता से सिद्धराज प्रभावित था और उसे किसी उच्च पद पर नियुक्त करना चाहता था । वि.सं. ११७० में सिद्धराज ने रा'खेंगार को हरा दिया और जब रा'खेंगार मर गया तब सज्जन को सौराष्ट्र का दंडनायक नियुक्त किया ।

सज्जन ने गिरनार तीर्थ के मन्दिर का आमूल-चूल जीर्णोद्धार करवाया जिसमें सौराष्ट्र की कर-वसूली में से ७२ लाख द्रव्य खर्च कर भव्य जिनप्रासाद बनवाया और राजा यदि यह द्रव्य मांगे तो वणथली के संघ से यह धन मिल सके ऐसा प्रबन्ध भी किया ।

वि.सं. ११८५ में सिद्धराज गिरनार तीर्थ पर यात्रा निमित्त आया । तब वह 'पृथ्वीजय-प्रासाद' के दर्शन कर अतीव प्रसन्न हुआ । बाद में जब सिद्धराज ने सौराष्ट्र की कर-वसूली की रकम मांगी तब सज्जन ने उक्त स्पष्टता करते हुए कहा- महाराज ! चाहें तो धन लेवें और चाहें तो पुण्य लेवें । 'मुझे पुण्य चाहिए' यह कहते हुए सिद्धराज ने आदेश दिया कि यह रकम जिनमन्दिर खाते खर्च लिख दो ।

वि.सं. १२०८ में कुमारपाल ने मालव जीता तब वहाँ दंडनायक पद पर सज्जन को नियुक्त किया । बाल मूलराज (वि.सं. १२३२-१२३४) के राज्यकाल में गुजरात के महामात्य पद पर रहकर सुन्दर व्यूहरचना से मुहम्मद गौरी के साथ युद्ध में गुजरात को विजय दिलवाई ।

भीम कुंडलिया अर्थात् सर्वस्वदान

महामात्य बाहड द्वारा हुए शत्रुंजय तीर्थोद्धार का प्रतिष्ठा-महोत्सव चल रहा था। तब निर्धन भीम ने अपने गाँव टीमाणा से घी लाकर संघ में बेचा, जिसका मूल्य एक रुपया और सात द्रम्म आये थे। इसमें से एक रुपये के फूल लेकर प्रभु की पूजा की। बाद में जीर्णोद्धार का इतना बडा कार्य कराने वाले मन्त्री बाहड को देखने की उसे इच्छा हुई। अतः मन्त्री के आवास के द्वार पर पहुँचा, किन्तु अन्दर प्रवेश करने में संकोच का अनुभव करने लगा।

सर्वस्व दान

मन्त्री बाहड ने इसके मनोगत भावों को जान लिया और इसे बुलाकर अपने समीप बैठाया। बाद में मन्त्री ने बडे प्रेम से कहा- तू मेरा साधर्मिक बन्धु है, कुछ भी कार्य हो तो निःसंकोच बतला। इसी समय तीर्थोद्धार की रकम पूरी करने हेतु चन्दा हो रहा था, उसमें भीम ने बचे हुए सात द्रम्भ चन्दे में दे दिये जो इसका सर्वस्व था। मन्त्री ने भीम की त्यागभावना से प्रसन्न हो कर उसका नाम दाताओं की सूची में सर्वप्रथम लिखवाया। इतना ही नहीं, मन्त्री ने सन्मान में ५०० द्रम्भ और तीन रेशमी वस्त्र इसके सामने भेंट रूप में रक्खे, तब भीम ने हँसकर कहा- मन्त्रीश्वर ! इस धन के लोभ में मैं अपना पुण्य नहीं बेच सकता हूँ। भीम का उत्तर सुनकर मन्त्री ने इसे खूब-खूब धन्यवाद दिये। अन्त में ताम्बूल प्रदान कर इसका सन्मान किया।

भीम शाम को जब घर पहुँचा उसे अपनी पत्नी, जो चण्डिका स्वरूप थी, बडी शान्त नजर आई, क्योंकि आज उसे गाय बांधने के खूंटे को ठीक करते चार हजार सोना मुहर मिली थी और इसी की बधाई देने के लिए वह अपने पतिदेव का इन्तजार कर रही थी। भीम ने यह बात अपनी पत्नी से सुनी तब उसे निश्चय हो गया कि यह प्रभु-पूजा का फल है। अतः दूसरे दिन संघ में आकर ये सोना मुहर उसने तीर्थ में व्यय करने के लिए मन्त्री बाहड को भेंट कर दी।

इसी रात्रि में कपर्दी यक्ष ने आकर भीम से कहा- मैं तेरी पुष्प-पूजा से प्रसन्न हुआ हूँ। इसीलिए मैंने तुझे यह धन दिया है। इस धन का तू स्वयं के लिए और शुभ कार्यो में व्यय करना, अब यह धन तेरे यहाँ कम न होगा।

दूसरे दिन भीम ने भगवान् ऋषभदेव की रत्न, सुवर्ण और पुष्पों से बडी भारी पूजा की और कपर्दी यक्ष की भी पूजा की । शाम को घर आया तब अपना भण्डार पूर्ववत् भरपूर पाया । इस प्रकार त्याग भावना से भीम सुखी हुआ ।

महुवा के जगडु

वि.सं. १२२६ में राजा कुमारपाल के संघ की तीर्थमाला की बोली लग रही थी । महामात्य बाहड ने चार लाख द्रम्म से बोली का प्रारम्भ किया । बोली बढने लगी । जगडु ने सीधे सवा करोड की बोली लगाकर अपनी माता को तीर्थमाला पहनाई । जगडुं के पास सवा करोड मूल्य के पांच माणिक्य थे । उसमें से एक शत्रुंजय तीर्थ में, दूसरा गिरनार तीर्थ में, तीसरा प्रभास तीर्थ में दिया । यह जगडु प्रसिद्ध दानवीर जगडुशाह (वि.सं. १३१५) से भिन्न है, जिनका वर्णन आगे किया जाएगा ।

हाँसी देवी और पासिल

सेठ छाडा की विधवा पुत्री हाँसीदेवी सिद्धराज के राजविहार में प्रभुदर्शन कर रही थी । उसी समय पासिल नाम का एक सामान्य दीखता जैन मन्दिर के कार्य का कुशलता से निरीक्षण कर रहा था एवं उसकी लंबाई-चौडाई का माप ले रहा था । यह देखकर हाँसी देवी ने मजाक में पूछा- भय्या ! क्या मन्दिर बंधवाना है जिससे माप ले रहे हो ? पासिल ने प्रत्युत्तर दिया- हाँ, बहिन तेरे मुँह में मिठाई ! तू उस मन्दिर में प्रतिष्ठा महोत्सव में अवश्य आना । हाँसीदेवी ने भी हाँ कहा ।

इस तरफ पासिल ने आरासण में जाकर देवी की आराधना कर धन प्राप्त किया और पेंतालीस हजार सोना मुहर व्यय कर भगवान् नेमिनाथ का भव्य मन्दिर बनवाया । हाँसी ने नौ लाख सोना मुहर के व्यय से उस मन्दिर में मेघनाद नाम का रंगमंडप बनवाया । वि.सं. ११९३ में आ. श्री देवसूरि ने प्रतिष्ठा की ।

मन्त्री कपर्दी अर्थात् दृढधर्मी

कपर्दी मूलत: निर्धन थे । कलिकालसर्वज्ञ आ. श्री हेमचन्द्रसूरि की आज्ञा से भक्तामरस्तोत्र का नित्य पाठ और ग्यारहवें श्लोक का जप करते थे । इससे धीरे धीरे आगे बढे । कहीं से इन्हें कामधेनु (मन चाहा देने वाली गाय) भी प्राप्त हुई । सिद्धराज के समय में ये खजानची रहे । बाद में कुमारपाल के राज्यकाल में इन्हें मन्त्रिपद भी मिला । इतना ही नहीं, ये महाराजा कुमारपाल के अतीव प्रीतिपात्र, साधर्मिक भक्ति के व्यवस्थापक और विचारसमिति के सदस्य थे । विद्वान् कवि भी थे ।

राजा कुमारपाल के बाद अजयपाल राजगद्दी पर आया । उसने एक दिन के लिये कपर्दी को महामात्य बनाया और धर्मपरिवर्तन करना अस्वीकार करने के कारण तैल की तपी कढाई में डलवा कर मरवा डाला । कपर्दी प्राणसंकट के अवसर पर भी हँसते-हँसते बोले- हमने याचकों को करोडों का दान दिया, बाद में विरोधियों को हराया, राजाओं को शतरंज की बाजी की तरह जमाया और उडाया । इत्यादि करने योग्य सब कर लिया है । अब विधाता को यदि हमारी आवश्यकता है तो हम वहाँ भी जाने के लिए तैयार है ।

शेठ आभड अर्थात् साक्षात् धैर्य

पाटण के करोडपति सेठ नाग की धर्मपत्नी मेलादेवी की कुक्षि में जब आभड था तभी अपने पिता की मृत्यु हो जाने से धन राजा ने ले लिया था । अमारि के दोहद से जन्म होने के कारण बालक का नाम अभय रखा । साथ खेलने वाले बच्चे 'आभड' कहकर पुकारते थे, अत: इसी नाम से यह बालक प्रसिद्ध हुआ । बालक का जन्म होने से लिया हुआ धन राजा ने वापिस लौटा दिया ।

चौदह वर्षकी उम्र में लांछलदेवी से शादी की और क्रमश: तीन पुत्र जन्मे । पाप के उदय से आभड वापिस निर्धन हो गया । आभड ने पत्नी को पुत्रों के साथ उसके पिता के घर भेज दिया और स्वयं किसी जौहरी के यहाँ हीरे घिसने लगा । मजदूरी के बदले में जौ मिलते थे जिन्हें स्वयं पीस लेता और रोटी बनाकर पेट

भर लेता था । इस तरह बडी कठिनाई से कुछ बचत की किन्तु हीरे घिसते-घिसते हीरों की परीक्षा में निष्णात बन गया ।

एक बार कलिकालसर्वज्ञ आ० श्री हेमचन्द्रसूरि के पास धर्म श्रवण कर परिग्रह-परिमाण व्रत में सात सौ सोनामोहरों का नियम मांगा । आचार्य श्री ने इसके चमकते भाग्य को देखकर इसे समझाया और नौ लाख का परिमाण एवं अधिक धन को धर्म के कार्यो में व्यय करने का नियम करवाया ।

एक बार कोई पशुपालक बकरी को बेचने के लिए बाजार ले जा रहा था । आभड ने उस बकरी के गले में नीला पत्थर देखकर बकरी उसके मालिक से खरीद ली । यह पत्थर नीलमणि था । बाद में इस पत्थर को विधिपूर्वक घिस कर आभड ने राजा सिद्धराज को एक लाख सोना मोहरों में बेच दिया । जिसे राजा ने अपने मुकुट में लगवाया ।

आभड ने अब कुटुम्ब को अपने पास बुला लिया और इस द्रव्य से व्यवसाय करने लगा । भाग्ययोग से फिर करोडपति बन गया । आभड ने नये २४ विशाल मन्दिर बनवाये, अनेक जिनप्रतिमाएँ निर्मित्त करवाई, बहुत से मन्दिरों का जीर्णोद्धार करवाया और ८४ पौषधशालाएँ बनवाई । इस तरह सात क्षेत्रों में प्रचुर धन का व्यय किया ।

युक्ति से मन्दिरों की रक्षा

राजा कुमारपाल के बाद अजयपाल गुजरात की राजगद्‌दी पर आया तब वह मन्दिर आदि धर्मस्थानों का नाश करने लगा । आभड ने मन्दिरों की रक्षा का कार्य युक्ति से किया । उसने अजयपाल के प्रीतिपात्र नट (भाँड) शीलण को काफी द्रव्य देकर तैयार किया । शीलण ने नाटक रचा । उसने अपने घर में हल्के लकडे का मन्दिर बनाया और उसे सफेदे से धवलित कर विविध चित्रों से अधिक सुन्दर बनाया । बाद में राजा अजयपाल को अपने घर आमंत्रित कर उसके हाथ में अपने पांचों पुत्रों को और मन्दिर को सौपते हुए हाथ जोडकर प्रार्थना करने लगा- हे महाराज ! मेरे ये पुत्र हैं, उनके लिए धन आदि की सुन्दर व्यवस्था है, मैं अब वृद्ध हो गया हूँ और तीर्थयात्रा की मेरी इच्छा है । अत:

आप आज्ञा दीजिये । जिससे मैं आत्मकल्याण करूँ । इस प्रकार उसने राजा की आज्ञा ले ली । बाद में स्वजनों से भी विदा लेकर प्रस्थान करने लगा । कुछ ही कदम शीलण आगे बढा कि उसके पांचों लडकों ने लाठियाँ चलाकर मन्दिर को जमींदोज कर दिया । मन्दिर के धडाम से गिरने की आवाज सुनकर शीलण टूटे दिल से वापिस लौटा और तिरस्कारपूर्ण वाणी से पुत्रों के प्रति कहने लगा- अरे दुर्भाग्यशेखरो ! यह (अजयपाल) कुनृप फिर भी अच्छा है, क्योंकि इसने तो अपने पिता (कुमारपाल) की मृत्यु के बाद उसके धर्मस्थानों का नाश किया है, जब कि तुम तो उससे भी अधमकोटि के हो, क्योंकि मेरे सौ कदम जाने की भी तुमने राह नहीं देखी ।

अजयपाल यह नाटक देखकर अत्यन्त लज्जित हुआ । उसने मन्दिर तोडने की प्रवृत्ति सर्वथा रोक दी । इस तरह आभड की युक्ति से तारंगा तीर्थ आदि अनेक मन्दिर बाल-बाल बच गये । इसी प्रकार ग्रन्थों को जैसलमेर जैसे सुरक्षित स्थानों में भेजकर बचा लिया ।

आभड शेठ प्रतिदिन एक घडा घी सुपात्रदान में, साधर्मिक वात्सल्य, महापूजा याचकों को दान वगैरह तथा प्रतिवर्ष दो बार संघपूजन, आगम ग्रन्थों का लिखवाना मन्दिर-उपाश्रय बनवाना इत्यादि सुकृत की रकम अट्ठानवें लाख द्रव्य सुनकर अपनी ८४ वर्ष की उम्र में विषाद करते हुए बोले- मैं बडा कंजूस रहा, पूरा एक करोड भी खर्च न कर सका । तब आभड के पुत्रों ने उसी समय दस लाख का और व्यय कर एक करोड आठ लाख तक धार्मिक व्यय पहुँचाया तथा आठ लाख दूसरे खर्च करने को कहा । इस प्रकार स्वयं शासन के अनेक कार्य कर आभड शेठ स्वर्गवासी हुए ।

आचार्य श्री विजयसिंहसूरि (बयालीसवें पट्टधर)

आ० श्री देवसूरि के पट्ट पर आ० श्री विजयसिंहसूरि आये । ये समर्थ वादी और विद्वान् थे । इन्होंने वि.सं. १२०६ में आरासण में प्रतिष्ठा करवाई ।

आचार्य श्री सोमप्रभसूरि शतार्थी (तयालीसवें पट्टधर)

महामंत्री जिनदेव के पौत्र सोमदेव ने आ० श्री विजयसिंहसूरि के पास दीक्षा ली और मुनि सोमप्रभ बने । आचार्य श्री ने इन्हें स्व-परशास्त्रों का गहरा अध्ययन करवाया और आचार्य पद प्रदान कर अपने पट्ट पर प्रतिष्ठित किया । आचार्य श्री सोमप्रभसूरि प्रकाण्ड विद्वान्, शीघ्र कवि और सफल उपदेशक थे । इनसे वि.सं. १२३८ में प्रतिष्ठित 'मातृकाचतुर्विंशति पट्ट' आज भी शंखेश्वर तीर्थ में पूजा जाता है । ये समर्थ ग्रन्थकार भी थे । इनकी ग्रन्थरचना निम्न प्रकार है :- (१) सुमतिनाहचरियं, (२) सिन्दूर-प्रकरण अपरनाम सोमशतक और सूक्तमुक्तावली, जिस पर अनेक विद्वानों ने टीकाऐं एवं पद्यानुवाद रचा है, (३) श्रृङ्गार-वैराग्यतरङ्गिणी, (४) शतार्थ काव्य-स्वयं ने एक श्लोक रचकर उसके एक सौ अर्थ किये, इसीसे आपको शतार्थी की ख्याति प्राप्त हुई और (५) कुमारपालपडिबोहो ।

इनके लघु-गुरुभ्राता आ० श्री मणिरत्नसूरि थे, जो अत्यन्त विनयी और संघ में सभी को प्रिय थे । इनके शिष्य आ० श्री जगच्चन्द्रसूरि हुए, जिनसे आघाटपुर (आयड) में 'वडगच्छ' 'तपागच्छ' के रूप में प्रसिद्ध हुआ ।

मेवाड के राजा और शीशोदीया ओसवाल वंश

मेवाड के राजा भर्तृभट्ट, अल्लट, कर्दम वगैरह जैनधर्म के अनुरागी एवं जैनाचार्यों के उपासक थे । इनकी परम्परा में राजा रणसिंह (वि.सं. १२११) हुआ, जिसके 'संग्रामसिंह' और 'समरसिंह' भी नाम थे । रणसिंह के करणसिंह पुत्र और धीरसिंह पौत्र था ।

राणा धीरसिंह ने वि.सं. १२२६ के आसपास जैनधर्म स्वीकार किया और इसीसे 'शीशोदीया ओसवाल वंश' चला । कालक्रम से इसके वंशज भूला (जि. सिरोही) से अहमदाबाद जा बसे, जहाँ आज भी नगरसेठ के पद से प्रसिद्ध है ।

नाडोल के राजा केल्हणदेव

नाडोल के राजा आल्हणदेव (वि.सं. १२०९-१२१८) का युवराज पुत्र केल्हणदेव जैनधर्म का अनुरागी था। उसने अपने पिता के राज्य में प्रत्येक अष्टमी एकादशी और चतुर्दशी के दिनों में अमारि का प्रवर्तन कराया था। यह पशु-बलि देने वाले को कडी शिक्षा देता था। बाद में (वि.सं. १२२१-१२४९) यह महा-मंडलेश्वर राजा बना।

चन्द्रावती (आबू) की रानी शृङ्गारदेवी

रानी शृङ्गारदेवी नाडोल के महामंडलेश्वर राजा केल्हणदेव की पुत्री और चन्द्रावती (आबू) के राजा धारावर्षदेव (वि.सं. १२२०-१२७६) की रानी थी। इसने वि.सं. १२५५ में झाडोली (जि. सिरोही) के भगवान् महावीर स्वामी की पूजा के लिए विशाल वाडी अर्पण कर जैनधर्म के प्रति अपना अनुराग प्रकट किया था।

राजा प्रह्लादन परमार और पालनपुर

राजा प्रह्लादन चन्द्रावती के धारावर्षदेव परमार का छोटा भाई था। यह बडा पराक्रमी था। मेवाड के राजा सामन्तसिंह के साथ हुए युद्ध में गुजरात का राजा अजयपाल घायल हुआ तब प्रह्लादन ने उसके प्राणों की और राज्य की वीरता से रक्षा की थी। इसी प्रह्लादन ने भगवान् पार्श्वनाथ की सुवर्ण-प्रतिमा को गलाकर अपना पलंग बनवाया था। इसी पाप से इसे भयंकर कोढ रोग हो गया। आ० श्री शीलधवलसूरि के उपदेश से इसने भगवान् पार्श्वनाथ की नयी सुवर्णमयी प्रतिमा बनवाई, जिसकी पूजा से इसका रोग शान्त हो गया एवं हाथ-पाँव की सडी-गली अंगुलियाँ पुनः पल्लवित हुई। इसके बाद प्रह्लादन ने वि.सं. १२७४ में प्रह्लादनपुर पालनपुर बसाया और वहाँ 'राजविहार' बनवाकर उसमें वह सुवर्णमयी प्रतिमा प्रतिष्ठित करवाई जो भगवान् 'पल्लविया पार्श्वनाथ' के नाम से प्रसिद्ध हुई।

राजा विज्जलराय

विज्जलराय कलचूरी वंश का था और जैन था। चौलुक्य वंश के तीसरे तैलप (वि.सं. १२०१-१२२१) का यह सेनापति था। इसने तैलप से सत्ता छीन ली थी और वि.सं. १२२१ में स्वयं राजा बन बैठा था। इसकी राजधानी कल्याणी में थी। यह जैन होने पर भी अन्य धर्म-सहिष्णु था। लिंगायतों पर इसने इतनी कृपा बतायी कि लिंगायत विज्जलराय का अन्त करने में सफल हुए। पण्डित वसव-ब्राह्मण शिवभक्त था। उसने विज्जलराय को फँसाने के लिए अपनी बहिन रूपसुन्दरी इसे दी। विज्जलराय रूपसुन्दरी के मोह में डूबा हुआ था। वसव ने रूपसुन्दरी द्वारा सर्वसत्ता अपने हाथ में लेकर विज्जलराय को मार डाला। विज्जलराय के बाद उसका पुत्र राजगद्दी पर आया जिसने वि.सं. १२३९ तक राज्य किया। बाद में सोमेश्वर चतुर्थ कर्णाटक का राजा बना।

जैसलमेर तीर्थ

लोद्रवा के रावल राजा दुसाजी के पुत्र जेसल ने वि.सं. १२१२ में लोद्रवा से १६ किलोमीटर दूर पहाडी पर किले का निर्माण कर जैसलमेर बसाया। यहाँ बडे बडे सात ज्ञानभण्डार, १० जैन मन्दिर और १८ उपाश्रय हैं। यह नगर ऐसे स्थान पर बसा है कि इसके चारों तरफ रेत के मैदान ही मैदान नजर आते हैं। साहित्य भंडारों को सुरक्षित रखने का यह योग्य स्थान है। इसे इतिहासलेखक मुनि त्रिपुटी ने साहित्यतीर्थ अथवा सारस्वततीर्थ कहा है।

सिद्धपुर

राजा सिद्धराज ने वि.सं. ११५२ में सिद्धपुर बसाया। इसी समय यहाँ भगवान् सुविधिनाथ का मन्दिर बना। वि.सं. ११८४ में राजा सिद्धराज ने 'रुद्रमाल' और जैन 'सिद्धविहार' अपरनाम 'राजविहार' बनवाया। इसी समय महामात्य आलिंगदेव ने यहाँ 'चौमुखविहार' बनवाया था। जिसके अनुसार धरणाशाह ने राणकपुर में वि.सं. १४९६ में धरणविहार-त्रैलोक्य-दीपकप्रासाद बनवाया।

यहाँ के चौमुखविहार में महामात्य ने भगवान् पार्श्वनाथ की प्रतिमा की प्रतिष्ठा करवाई थी। अलाउद्दीन खिलजी ने इसे तोडना चाहा, किन्तु भोजकों ने उसकी उपस्थिति में दीपक-राग गाकर १०८ दीप प्रकटाए। तब एक सर्प प्रकट होकर बादशाह के सामने आ बैठा, जिसे देखकर बादशाह आश्चर्यचकित हुआ और बोल उठा- यह देव तो बादशाहों का भी बादशाह सुल्तान है। इतना कहकर बादशाह जैसे आया था वैसे ही लौट गया। तब से यह प्रतिमा सुल्तान पार्श्वनाथ के नाम से प्रसिद्ध हुई। आज भी यह प्रतिमा भगवान् चन्द्रप्रभस्वामी के मन्दिर के उपरि भाग में बिराजमान है।

तारंगातीर्थ

तारणगिरि से सूचित तारंगा शत्रुंजयगिरि का परिवार होने से प्राचीन जैन तीर्थ है।

कुमारपाल महाराजा ने पाटण से भगवान् अजितनाथ के दर्शन कर सपादलक्ष और मेवाड को विजय-यात्रा के लिए प्रस्थान किया था। बाद में विजयी होकर पाटण लौटे तब प्रथम भगवान् अजितनाथ की भक्तिपूर्वक पूजा की और इन्हीं भगवान् का एक विशाल मन्दिर बनाने का मन में संकल्प किया।

इसी संकल्प की सिद्धिस्वरूप कुमारपाल ने यहाँ गगनचुम्बी भव्य बावन जिनालय तारंगा पर बनवाया जो अपनी ऊँचाई के लिए प्रसिद्ध है। वि.सं. १२२१ में भगवान् अजितनाथ की प्रतिष्ठा कलिकालसर्वज्ञ आ० श्री हेमचन्द्रसूरि ने करवाई थी।

बाद में अलाउद्दीन खिलजी ने इस मन्दिर को बहुत नुकसान पहुँचाया। युगप्रधान आ० श्री सोमसुन्दरसूरि के उपदेश से ईडर के संघवी गोविन्द ने जीर्णोद्धार करवाया और वि.सं. १४७६ में नई प्रतिमा बनवाकर इन्हीं आचार्य भगवंत से प्रतिष्ठा करवाई।

भगवान् गोडीजी पार्श्वनाथ

बरोडा के कानजी जैन द्वारा भराई गई और पाटण में वि.सं. १२२८ में कलिकालसर्वज्ञ आ० श्री हेमचन्द्रसूरि द्वारा अंजनशलाका प्रतिष्ठा की गई भगवान्

पार्श्वनाथ की प्रतिमा बडी चमत्कारी सिद्ध हुई । कालक्रम से यह प्रतिमा झींझुवाडा के शेठ गोडीदास के गृहमन्दिर में पूजी जाने लगी ।

एक बार दुष्काल के कारण शेठ गोडीदास और सोढाजी झला मालव गये हुए थे । वापिस लौटते समय किसी स्थान पर रात्रि वास किया । वहाँ एक कोली ने शेठ की हत्या कर दी, बाद में सोढाजी झाला ने उस कोली को मार डाला । शेठजी मरकर व्यंतर हुए और घर-मन्दिर में स्थित भगवान् पार्श्वनाथ की प्रतिमा के अधिष्ठायक बने । तब से यह प्रतिमा गोडी पार्श्वनाथ के नाम से प्रसिद्ध हुई ।

इसी प्रतिमा के अधिष्ठायक ने सोढाजी को सुखी बनाया । बाद में सोढाजी प्रतिमा अपने घर ले आये और पूजने लगे । इसीसे सोढाजी झींझुवाडा के राजा और गुजरात के महामंडलेश्वर बने ।

बाद में यह प्रतिमा कुछ काल तक पाटण में रही, जहाँ अलाउद्दीन खिलजी के भय से भूगर्भ में रखी गई । दिव्य संकेत से पाटण के सूबेदार हसनखान (हीयासुद्दीन) ने इसे भूगर्भ से पाई और सूबेदार की बीबी इसे पूजने लगी ।

पश्चात् यह प्रतिमा नगरपारकर में ले जाई गई, जहाँ नया मन्दिर निर्मित किया गया पाटण से नगरपारकर के रास्ते में जो जो गाँव आये वहाँ पादुका रूप में इस प्रतिमा की स्थापना की गई जो 'वरखडी' नाम से प्रसिद्ध है ।

श्री शंखेश्वर-तीर्थ का जीर्णोद्धार और राजा दुर्जनशल्य

झींझुवाडा के राजा सोढा के बाद उसका पुत्र दुर्जनशल्य राजा और महामंडलेश्वर बना । यह चतुर्दशी शाखा के आ० श्री देवेन्द्रसूरि और महान् ज्योतिषी आ० श्री हेमप्रभसूरि का उपासक था । पूर्व के पाप से यह कोढ रोग से ग्रस्त हो गया, जिसे मिटाने के लिए अनेक उपचार किये । अन्त में झींझुवाडा के सूर्यनारायण की आराधना की । सूर्यनारायण ने स्वप्न में कहा- रोग दुस्साध्य है, यहाँ मिटेगा नहीं, अत: शंखेश्वर तीर्थ में जा वहाँ भगवान की सेवा से रोग शान्त हो जायेगा पूजा से रोग शान्त हो गया । राजा ने बाद में इस तीर्थ का जीर्णोद्धार करवाया और वि.सं. १३१० में देवविमान तुल्य जिनप्रासाद का निर्माण करवाया ।

तपस्वी हीरला आ. श्री जगच्चन्द्रसूरि (चवालीसवें पट्टधर)

आ० श्री सोमप्रभसूरि के पट्ट पर आ० श्री जगच्चन्द्रसूरि हुए। ये आ० श्री मणिरत्नसूरि के शिष्य थे। वि.सं. १२७४ में गुरुदेव के स्वर्गवास से आपने आयंबिल तप का आरंभ किया और आ० श्री सोमप्रभसूरि की सेवा में रहकर अध्ययन किया। आ० श्री सोमप्रभसूरि ने इन्हें आचार्यपद देकर गच्छनायक पद पर प्रतिष्ठित किया। आप श्री ने देवभद्रगणी (ये दोनों आगे जाकर आचार्य हुए) की सहायता से क्रियोद्धार किया। आयंबिल करते बारह वर्ष होने आये तब आप मेवाड में पधारे। आघाटपुर (आयड) में मेवाड के राणा जैत्रसिंह ने वि.सं. १२८५ में आपके तप और ध्यान से प्रभावित होकर आपको 'तपा' का बिरुद दिया। तब से 'वटगच्छ' तपागच्छ कहलाने लगा। चितौड को राजसभा में आपने अनेक दिगम्बर आचार्यो को हराया और स्वयं हीरे की तरह अभेद्य रहते हुए चमकने लगे। अत: राजाने आपको 'हीरले' का बिरुद भी दिया।

गुजरात के महामात्य वस्तुपाल और तेजपाल भी आपके उपासक रहे। इनके शत्रुञ्जय तीर्थ के 'छ' री पालित संघ में तथा आबू तीर्थ की प्रतिष्ठा में आप उपस्थित रहे। आप वि.सं. १२६५-६६ में स्वर्गवासी हुए।

आचार्य श्री देवेन्द्रसूरि (पेंतालीसवें पट्टधर)

आ० श्री जगच्चन्द्रसूरि के पट्टधर उनके शिष्य आ० श्री देवेन्द्रसूरि हुए। ये प्रकृति से शान्त, प्रकाण्ड, विद्वान्, महान् ग्रन्थकार और शासनप्रभावक थे।

वि.सं. १२८५ में गुरुदेव ने आपको आचार्य पद प्रदान किया। आपके उपदेश से मेवाड के राणा तेजसिंह ने अमारि प्रवर्तन कराया और रानी जयतलादेवी ने चितौड के किले पर शामलिया पार्श्वनाथ का मन्दिर बनवाया।

वि.सं. १३०७ में आप मालवा तरफ पधारे, जहाँ बारह वर्ष तक विचरे। तब तक आपके छोटे गुरुभाई आ० श्री विजयचन्द्रसूरि खंभात में चैत्यवासियों की बडी पोषधशाला में ही रहे और शिथिलाचारी बन गये। आगे बढकर इन्होंने आ० श्री देवेन्द्रसूरि की आज्ञा का भी त्याग किया और अपना स्वतंत्र गच्छ चलाया, जिसकी परम्परा लम्बी न चल सकी।

वि.सं. १३१६ में बारह वर्ष बाद आ० श्री देवेन्द्रसूरि मालव से लौटकर पुनः खंभात पधारे आ० श्री विजयचन्द्रसूरि ने विनय, वंदन आदि का औचित्य भी नहीं पाला । अतः आ० श्री देवेन्द्रसूरि लघु पोषधशाला में ठहरे । इस तरह गच्छ में भेद पडा, जो विवेकी श्रावकों को अच्छा न लगा । इसीलिए खंभात के सोनी सांगण ने इन दो शाखाओं में कौनसी शाखा सच्ची है, इसका निर्णय पाने हेतु तप किया और स्तंभन पार्श्वनाथ की प्रतिमा के सामने ध्यान धारण किया । शासनदेवी ने प्रत्यक्ष होकर कहा- आ० श्री देवेन्द्रसूरि युगोत्तम आचार्यपुंगव है और इनकी परम्परा लम्बे समय तक चलेगी । अतः इनकी उपासना करने योग्य है ।

गुजरात के महामात्य वस्तुपाल और तेजपाल भी आपके उपासक रहे । अनेक ग्रन्थों की रचना वगैरह शासनहित के कार्य कर आप वि.सं. १३२७ में स्वर्गवासी हुए । खंभात के संघवी सोनी भीम ने आपके वियोग में १२ वर्ष तक अन्न का त्याग किया । आपकी ग्रन्थ-रचना निम्न प्रकार है :- भाष्यत्रय, श्राद्धविधिकृत्य, पंच नव्य कर्मग्रन्थ, स्वोपज्ञवृत्तिसहित सिद्धपंचाशिका एवं धर्मरत्नप्रकरण-छ कर्म-ग्रन्थ और श्राद्ध प्रतिक्रमण सूत्र की वृत्तियाँ आपने रचीं ।

आ. श्री विद्यानन्दसूरि और आ. श्री धर्मघोषसूरि (छयालीसवें पट्टधर)

आ० श्री देवेन्द्रसूरि के पट्ट पर आ० श्री विद्यानन्दसूरि आये । ये पूर्व पर्याय में उज्जैन के श्रेष्ठिपुत्र वीरधवल थे । आ० श्री देवेन्द्रसूरि ने इन्हें विवाह-महोत्सव में प्रतिबोध देकर वि.सं. १३०२ में दीक्षा दी । वि.सं. १३२३ में पालनपुर में आपको आचार्य पद दिया गया । उस अवसर पर मन्दिर में केसर की वृष्टि हुई थी । ये बडे विद्वान् थे । इन्होंने 'विद्यानन्दव्याकरण' रचा जो संख्या में कम सूत्र और बहुत अर्थ के संग्रह वाला होने से अपने समय का सर्वोत्तम व्याकरण था ।

आ० श्री देवेन्द्रसूरि के स्वर्गवास के बाद १३ दिन के अल्पकाल में ही आप भी स्वर्गवासी हो गए । संघ के लिए यह दुःखद घटना थी । अन्त में सभी ने आ० श्री विद्यानन्दसूरि के छोटे भाई और गुरुभ्राता उपाध्याय श्री धर्मकीर्ति को योग्य जानकर गच्छनायक बनाने का निर्णय लिया । एवं बडी पौषधशाला वाले आ० श्री विजयचन्द्रसूरि के शिष्य और बृहत्कल्प की 'सुबोधिका वृत्ति' को पूर्ण

करने वाले आ० श्री क्षेमकीर्तिसूरि ने उपा० धर्मकीर्ति को आचार्य पद दिया और उनका नाम आ० श्री धर्मघोषसूरि रखकर आ० श्री देवेन्द्रसूरि के पट्ट पर स्थापित किया । इस तरह आ० श्री धर्मघोषसूरि तपागच्छ-नायक बने ।

आ० श्री धर्मघोषसूरि विद्वान्, कवि, सिद्धपुरुष, ग्रन्थकार और प्रभावक युग-प्रधान हुए ।

एक बार समुद्र-किनारे खडे रहकर मन्त्रमय 'समुद्र-स्तोत्र' की रचना कर उसे ललकारा । समुद्र में ज्वार उभरा और रत्न उछले जिनसे आचार्य श्री के पाँवों के आगे रत्नों का ढेर लग गया ।

एक बार उज्जैन में किसी योगी ने मन्त्रबल से चूहा को साधुओं की बसति में भेजा । आचार्य श्री ने एक घडे का मुँह बंद कर मन्त्र-जाप आरम्भ किया । योगी रोता चिल्लाता आया और आपके पाँवों मे गिरकर क्षमा माँगने लगा । ऐसे अनेक प्रसंग आपके जीवन-काल में आये ।

किसी मन्त्री ने आठ यमकवाला कोई काव्य प्रस्तुत करते हुए कहा- वर्तमान काल में ऐसा काव्य बनाने वाला कोई नहीं है । आचार्य श्री ने कहा- 'कोई नहीं' यह कहना उचित नहीं है । मन्त्री ने कहा- ऐसा कोई कवि हो तो बताइए । आचार्य श्री ने एक ही रात्रि में आठ यमकवाली 'जय वृषभ' पद से आरम्भ कर स्तुति बनाई और दीवार पर लिख दी । मन्त्री दूसरे दिन स्तुति पढ-कर आश्चर्यचकित हुआ और आचार्य श्री के उपदेश से प्रतिबोध को प्राप्त हुआ ।

आचार्य श्री ने वि.सं. १३३२ में अपने विद्वान् और संयमी शिष्य सोमप्रभ को आचार्य पद से अलंकृत किया और अपने पास की मन्त्र-पोथी दी, किन्तु नये आचार्य श्री ने हाथ जोडकर कहा- आपकी कृपा ही मेरे लिए सर्वस्व है । आ० श्री धर्मघोषसूरि ने एक तरफ आ० श्री सोमप्रभसूरि की निःस्पृहता और दूसरी तरफ अन्य किसी शिष्य में योग्यता का अभाव देखकर मन्त्र-पोथी को जलशरण कर दिया ।

आप श्री के उपदेश से दयावट=दियाणा तीर्थ (जि. सिरोही) में वि.सं. १३४६ में ग्रन्थभण्डार की स्थापना हुई । वि.सं. १३५७ में आप स्वर्गवासी हुए । आप श्री की ग्रन्थरचना निम्न प्रकार है :-

संघाचारभाष्यविवरण, अवंचूरी सहित कायस्थिति-प्रकरण, दुस्समकालसमण-संघथय, योनिस्तव और लोकान्तिकदेवलोकजिनस्तव, समवसरणप्रकरण, श्राद्धजितकल्प, सत्तुंजयमहातित्थकप्प, अष्टापद-गिरनार-सम्मेतशिखर तीर्थकल्प, ऋषिमण्डलस्तोत्र, युगप्रधानस्तोत्र, जीवविचारस्तव इत्यादि अनेक ग्रन्थ है ।

प्रजाप्रिय राजा वीरधवल

धोलकानरेश वीरधवल गुजरात के राजा भोला भीमदेव का सर्वोपरि कार्य-कर्ता अर्थात् महामंडलेश्वर था । यह बुद्धिमान् और प्रजाप्रिय था । मलधारी आ० श्री देवप्रभसूरि एवं महामात्य वस्तुपाल-तेजपाल से प्रभावित था । इसने मांस, मदिरा, शिकार आदि महाव्यसनों का त्याग किया था ।

यह राजा अत्यन्त प्रजाप्रिय था । जब यह स्वर्गवासी हुआ तो इसके साथ चिता में १२० आदमी जल मरे थे । दूसरे भी बहुत से मरने वाले थे किन्तु महामात्यों ने उन्हें सिपाहियों द्वारा रोक दिया ।

महामात्य वस्तुपाल और तेजपाल के पूर्वज

चंडप पोरवाल गुजरात के राजा भीमदेव का भंडारी था । उसका पुत्र चंड-प्रसाद राजा कर्णदेव का मन्त्री था । उसके दो पुत्र- (१) शूर और (२) सोम राजा सिद्धराज के मन्त्री थे । सोम का पुत्र आसराज, जो राजकार्य में नियुक्त था, एक बार मालासण गाँव गया । वहाँ उसने शेठ आभू की बालविधवा पुत्री कुमारदेवी को सुन्दर लक्षणों वाली जानकर उससे शादी कर ली । उससे क्रमशः चार पुत्र हुए- (१) लुणिग (२) मल्लदेव (३) वस्तुपाल और (४) तेजपाल ।

लुणिग- यह राजकार्य में कुशल था । यौवन वय में ही इसकी मृत्यु हो गई । उस समय आसराज का कुटुम्ब निर्धन था । मृत्यु के समय लुणिग के कुटुम्ब के सदस्यों ने तीन लाख महामन्त्र के जाप के अनुमोदन का पुण्य बंधवाया । इसी समय वस्तुपाल ने लुणिग से उसकी अन्तिम इच्छा पूछी । तब उसने गद्गद भाव से कहा- आबू तीर्थ में एक आद्य जिनेश्वर भगवान् की देव-कुलिका बनवाने की उत्कट भावना थी, किन्तु पूरी न हो सकी । अतः अनुकूलता हो तो, तुम

पूरी करना । बस वस्तुपाल तेजपाल के दिल में इसी भावना का बीज पडा जो एक बडे कल्पवृक्ष के रूप में फूला-फला । आबू पर लुणिगवसही नाम का दर्शनीय, विशाल और कलामय जिनमन्दिर बना, जिसका श्रेय लुणिग की शुभ भावना को है ।

मल्लदेव महाजन-मुख्य और राजा का मन्त्री था । यह धर्मी, उदार और न्यायी था ।

महामात्य वस्तुपाल और तेजपाल

वस्तुपाल गुजरात का महामात्य था । यह आ० श्री विजयसेनसूरि को धर्मदाता गुरु मानता था । वि.सं. १२७६ में यह खंभात का दंडनायक बना । यह स्वयं विद्वान् और विद्यानुरागी था । इसने सं. १२६० में श्री धर्माभ्युदयमहाकाव्य, शत्रुंजयमंडन, आदिनाथस्तोत्र, गिरनारमंडन श्रीनेमिनाथस्तोत्र और अंबिकादेवी स्तोत्र की रचना की । राजा वीरधवल के शब्दों में ''वस्तुपाल, जिसमें जवानी है फिर भी मदनविकार नहीं, लक्ष्मी है किन्तु गर्व नहीं और सज्जन-दुर्जन की परीक्षक बुद्धि है परन्तु कपट नहीं ।''

तेजपाल गुजरात का महामात्य था और बडा शूरवीर था ।

आरम्भ में यह दोनों भाई राजा वीरधवल के महामात्य बने । इनकी सूझबूझ से गुजरात में छाई अराजकता समाप्त हो गई । इतना ही नहीं, किन्तु गुजरात, राजस्थान और महाराष्ट्र के हिंदु राजाओं का पुनः संगठन हुआ । वि.सं. १२८३-८४ में दिल्ली के बादशाह अल्तमश शमशुद्दीन की बडी सेना ने गुजरात पर आक्रमण किया था जिसे दक्षिण से वस्तुपाल ने और उत्तर से धारावर्षदेव वगैरह राजाओं ने हुमला कर नष्ट कर दिया था । इस तरह इन दोनों भाइयों ने कुल ६३ युद्धों में विजय पाई थी ।

राजा वीरधवल की मृत्यु के बाद उसका पुत्र वीसलदेव राजा बना । एक दिन किसी क्षुल्लक (बाल साधु) ने उपाश्रय के उपरि भाग से प्रमाद से कचरा नीचे फेंक दिया, जो राह चल रहे राजा के मामा सिंह जेठवा पर जा पडा । सिंह जेठवा ने आवेश में आकर क्षुल्लक को मारा और बुरा-भला कहा । मन्त्री वस्तुपाल ने जब यह वृत्तान्त सुना तब किसी राजपुत्र द्वारा सिंह जेठवा का हाथ कटवाकर अपने

महल के आगे लटकवा दिया । बस, वस्तुपाल और सिंह जेठवा के दोनों सैन्य आमने सामने आ गये । अन्त में राजपुरोहित सोमेश्वर ने राजा के मामा और वस्तुपाल को शान्त किया और सिंह जेठवा से माफी मंगवाई । इस तरह जैन धर्म और मन्त्री का गौरव बढा ।

आ० श्री नरचन्द्रसूरि ने वि.सं. १२८७-८८ में अपने कालधर्म के समय कहा था- वस्तुपाल ! आज से दश वर्ष बाद तेरी मृत्यु होगी । उनके वचन को याद कर वस्तुपाल ने वि.सं. १२९७-९८ में शत्रुंजय तीर्थ का संघ निकाला और रास्ते में ही आचार्य भगवन्तों के श्रीमुख से अन्तिम आराधना कर मरण पाया । सुना जाता है कि वस्तुपाल मरकर महाविदेह में किसी राजकुल में उत्पन्न हुए हैं जो राज्यसुख भोगकर संयम ग्रहण करेंगे और कैवल्य पाकर मुक्त होंगे । तेजपाल भी कुछ ही समय के बाद समाधिपूर्वक परलोक सिधार गया ।

वस्तुपाल तेजपाल के सुकृत

आबू पर लुणिगवसही इत्यादि १३०४ नूतन जिनमन्दिरों का निर्माण, २३०० मन्दिरों का जीर्णोद्धार, सवा लाख जिनप्रतिमाओं की प्रतिष्ठा, ९८४ उपाश्रय, ७०० दानशालाएँ, साढे बारह संघयात्राएँ, अनेक उद्यापन, अनेक ज्ञानभंडार, अनेक आचार्यादिपद-प्रदान महोत्सव और बहुत से अन्य लोकोपयोगी कार्य इनके हैं ।

अनुपमादेवी

अनुपमा देवी महामात्य तेजपाल की धर्मपत्नी थी । यह बुद्धिमती, उदार और शान्त थी । अपने उदार स्वभाव से कुटुंब में सभी को प्रिय हो गई थी । बुद्धिमता के कारण इसकी सलाह के बिना कुटुंब में एक भी महत्त्व कार्य न होता था । लुणिगवसही के निर्माण की पूरी जिम्मेदारी इसने निभाई थी । निर्माण काल में यह अपने भाई उद्दल को साथ रखकर लम्बे समय तक आबू पर रही थी । सुना जाता है कि यह मरकर महाविदेह में जन्मी, जहाँ आठ वर्ष की वय में भगवान् सीमन्धरस्वामी के पास चारित्र ग्रहण किया और वर्तमान में केवली होकर विचर रहे है ।

दानवीर जगडू शाह

कच्छ भद्रावती के जगडू शाह आ० श्री परमदेवसूरि के उपदेश से दृढधर्मी बने । वि.सं. १३१३-१४-१५ में भयंकर दुष्काल पडा तब जगडूशाह ने ११२ दान-शालाएँ स्थापित कर लोगों को भुख से अकाल में मरने से बचाया । धोलका के वीशलदेव, सिंघ के हम्मीर, मालव के मदनवर्मा, दिल्ली के बादशाह, काशी के राजा प्रताप, मेवाड के राणा इत्यादि राजा महाराजाओं को दुष्काल में अनाज दिया । इस प्रकार जगडूशाह ने 'दानवीर' की ख्याति पाई ।

जगडूशाह की मृत्यु हुई तब उसके सन्मान में दिल्ली के बादशाह ने मुकुट उतारा, सिन्धपति ने दो दिन तक अन्न त्यागा तथा अर्जुनदेव ने खूब विलाप किया तथा पूरे दिन खाना नहीं खाया ।

जगडूशाह ने सौराष्ट्र के दक्षिण किनारे के समुद्र में कोयला पहाडी पर की देवी को साक्षात् कर हंमेशा के लिए नरसंहार अटकाया । आज भी इस देवी के मन्दिर में प्रतिवर्ष मेले के दिन लोग देवी की आरती के बाद साहसवीर जगडूशाह और उसके पुत्र की आरती उतारते हैं ।

देदाशाह और कुंकुमरोला पौषधशाला

देदाशाह नीमाड प्रदेश के नन्दुरी गाँव का निवासी था । ''सुवर्णसिद्धि'' की प्राप्ति से धनाढ्य हुआ, किन्तु गाँव के ठाकुर आदि द्वारा परेशान होकर गुजरात के वीजापुर में आ बसा ।

एक बार देदाशाह कार्यवश देवगिरि (दौलताबाद) गया । वहाँ गुरु महाराज को वंदन करने गया । गुरु महाराज के पास स्थानीय संघ नूतन पौषधशाला के निर्माण हेतु एकत्रित हुआ था और विचारणा चल रही थी । तब देदाशाह ने स्वयं पौषधशाला बनवाकर देने का संघ से आदेश मांगा । संघ ने कहा- भाग्यशाली! संघ में ऐसे अनेक घर हैं जो अकेले ही पौषधशाला बनवा सकते हैं किन्तु गुरु भगवन्तों की उपस्थिति में उनका घर 'शय्यातर का घर' बन जाएगा और उन्हें सुपात्र-दान से वंचित रहना पडेगा, अतः संघ ही सामुदायिक रीति से बनाने की सोच रहा है । फिर भी देदाशाह ने अधिक आग्रह किया तब संघ में से कोई बोल

उटा- आप व्यर्थ आग्रह कर रहे हैं। फिर भी यदि आप सोने की ईंटों से बनवाओ तो संघ आदेश देगा। देदाशाह ने 'अहो भाग्य' कहकर स्वीकार किया, किन्तु ऐसी पौषधशाला के शीघ्र नष्ट हो जाने का भय देखकर आचार्य भगवंत और संघ ने निषेध कर दिया। तब देदाशाह ने उतने ही मूल्य का केसर लाकर चूने में घोंटकर पौषधशाला बनवाई, जो 'केसररोल शाला' के नाम से प्रसिद्ध हुई।

मन्त्री पेथडशाह

देदाशाह की मृत्यु के बाद उनका पुत्र पेथडशाह निर्धन बन गया था। एक बार धर्मश्रवण करने के बाद आ० श्री धर्मघोषसूरि म. के पास मामूली रकम का परिग्रह-परिमाण व्रत मांगा, किन्तु आचार्य श्री ने पेथडशाह का चमकता भाग्य देखकर 'पांच लाख टंक' का परिमाण करवाया।

पेथडशाह व्यवसाय हेतु मांडवगढ गया। वहाँ घी का व्यवसाय करने लगा। कुछ ही समय में चित्राबेल की प्राप्ति से बडा धनिक हो गया। बाद में मांडवगढ के राजा जयसिंह परमार (वि.सं. १३१९-१३३७) का मन्त्री बना।

पेथडशाह का स्वाध्याय-प्रेम प्रशंसनीय था। मन्त्रिपद की व्यस्तता रहने पर भी राजसभा में जाने-आने के समय रथ में बैठे-बैठे यह तीन नये श्लोक नित्य कंठस्थ कर लेता था। उसका साधर्मिकवात्सल्य भी अजोड था। रास्ते में नये साधर्मिक के दर्शन होते ही रथ से नीचे उतरकर उसे भेंट पडता था। प्रभुभक्ति में इतना लीन बन जाता था कि एक बार साक्षात् राजा इसे देखने गृहमन्दिर में आया किन्तु प्रभुभक्ति की एकाग्रता में राजा के आगमन को भी वह नहीं जान सका।

३२ वर्ष की वय में पेथडशाह ने ब्रह्मचर्यव्रत स्वीकार किया था। व्रत के प्रभाव से उसके वस्त्र को ओढने मात्र से रानी का कालज्वर और हाथी का पागलपन मिट गया था।

पेथडशाह के सुकृत

राजा द्वारा अमारि-प्रवर्तन, सात लाख मनुष्यों सहित शत्रुंजय-गिरनारतीर्थ का छ'री पालित संघ, गिरनार तीर्थ पर ५६ धरी सोने की बोली बोलकर इन्द्र-माला पहिनने द्वारा सदा के लिए इस तीर्थ को श्वेतांबर संघ का बनाना तथा इसी प्रसंग पर १४ धरी सोना याचकों को दान में देना, आचार्य भगवन्तों के नगरप्रवेश, ओंकारनगर देवगिरि इत्यादि नगरों में कुल ८४ नूतन मन्दिर बनवाना, ७०० उपाश्रयों और अनेक ग्रन्थभंडारों की स्थापना वगैरह पेथडशाह के सुकृत अनुमोदनीय है।

मंत्री झांझनशाह

पेथड शाह का पुत्र झांझन शाह भी मांडवगढ का मंत्री बना। वि.सं. १३४६ में इसने भी शत्रुंजय-गिरनार तीर्थ का छ'री पालित संघ निकाला।

सत्यवादी सोनी भीम

सोनी भीम खंभात का निवासी था। आ० श्री देवेन्द्रसूरि का यह परम भक्त था और इसने उनके समक्ष जूठ न बोलने की प्रतिज्ञा ली थी।

एक बार कुछ डाकुओं ने भीम को बान में लेकर उसके पुत्रों से चार हजार रुपये मांगे। भीम के पुत्रों ने नकली सिक्के भेजे, जिनकी परीक्षा का कार्य डाकुओं ने भीम को ही सौंपा। भीम ने परीक्षा कर तुरन्त कहा- ये सिक्के नकली हैं। इस तरह भीम की सत्यवादिता से प्रभावित हो कर डाकुओं ने इसे मुक्त कर दिया। बाद में भीम ने भी उन डाकुओं को डाके डालने के धंधे से छुडाकर खेती के धंधे में लगा दिया।

सोनी भीम ने नगर में भूमि के अभाव से नगर से बाहर एक बडी पौषध-शाला बनवाई। किसी ने भीम से कहा- पौषधशाला तो भव्य बनी है किन्तु पैसे पानी में गये। क्योंकि जंगल में होने से यहाँ कौन आयेगा ? भीम ने हँसकर कहा- बात तो तुम्हारी सही है, फिर भी कपडे आदि की फेरी करने वाला कोई एक आध जैन यहाँ आकर सामायिक करेगा अथवा नमस्कार मंत्र जपेगा तो वह द्रव्य सफल हुआ मानूंगा। हुआ भी ऐसा कि पौषधशाला की दिशा में ही नगर बढा और पौषधशाला नगर के मध्य में हो गई, क्योंकि वह न्यायोपार्जित धन से बनी थी।

इसी भीम ने आ० श्री देवेन्द्रसूरि का स्वर्गवास होने से उनके वियोग में १२ वर्ष तक अन्न का त्याग किया था।

विदेशी आक्रमणकार और उनका शासन

भारत पर हूणों के बाद भी अनेक विदेशियों ने आक्रमण किये और शासन किया। उनका संक्षिप्त उल्लेख निम्न प्रकार है :-

मुहम्मद कासिम ने ई.स. ७११ में सिन्ध पर आक्रमण किया था।

मुहम्मद गजनी ने ग्यारह बार भारत पर आक्रमण किया । ई.स. १००० में इसके सेनापति **मसाऊद गाजी** को श्रावस्ती के जैन महाराजा **सुहीलध्वज** ने कटीली नदी के किनारे हराया था । इसने ई.स. १०१५ में भिनमाल एवं साचौर को तथा ई.स. १०२४ में सोमनाथ के मन्दिर को लूटा और मन्दिर-मूर्तियों को तोडा । ई.स. १०३० में यह मधुमेह की बीमारी से मरा।

मुहम्मद गोरी ने तीन बार आक्रमण किया । ई.स. ११७८ में यह गजनी से मुलतान होकर गुजरात पर चढ आया, जहाँ से इसे हार खा कर वापिस अपने देश लौटना पडा । दूसरी बार ई.स. ११९० में इसने आक्रमण किया तब तराईन के मैदान में पृथ्वीराज चौहान ने इसे मार भगाया । तीसरी बार कन्नौज के राजा जयचंद की सहायता से इसने आक्रमण कर पृथ्वीराज चौहान को हराया और दिल्ली का राज्य अपने प्रतिनिधि गुलाम वंश के कुतुबुद्दीन ऐबक को सौंप कर यह पुनः गजनी चला गया । इस तरह भारत पर गुलाम वंश का शासन स्थापित हुआ।

गुलामवंश

कुतुबुद्दीन ऐबक प्रथम मुसलमान सुल्तान हुआ । इसने ई.स. ११९६ में मेरवाडा के मेरों पर हमला किया किन्तु मेरों को गुजरात की सहायता पहुँच गई और इसे भागकर अजमेर के किले में घुस जाना पडा । पुनः ई.स. ११९७ में आक्रमण कर आबू, चन्द्रावती और पालनपुर को जीतकर लूटा और मन्दिर- मूर्तियों को तोडता यह पाटण पहुंचा वहां इसने अपनी सत्ता जमाई किन्तु गजनी से मुहम्मद गोरी का आदेश आने पर यह वापिस दिल्ली आ गया । बाद में ई.स.१२१४ में इसने कन्नोज औरकाशी को भी जीतकर लूटा और वहां के मन्दिर-मूर्तियों को तोडा। इसके राज्यकाल ई.स. १२०२ में ही बख्त्यार खिलजी ने लखनऊ में स्वतंत्र राज्य की स्थापना की । इसके बाद इसका जामाता शमसुद्दीन अल्तमस शासक बना । इसने भीई.स. १२२६ में मांडवगढ, ग्वालियर और उज्जैन को जीता, लूटा और मन्दिर-मूर्तियों को तोडा। इसके बाद इसकी लडकी रजिया शासिका हुई।

रजिया सुल्ताना प्रथम स्त्री शासिका थी जो पुरुष के वेश में रहती थी। इसे एक हबशी से प्रेम हो गया था। बाद में इसने सरदार अल्तुनिया से शादी की। तुर्को को'स्त्री राज्य करे' यह पसन्द न था अतः इन्होंने रजिया और सरदार दोनों को मारकर रजिया के भाई मोहजुद्दीन को शासक बनाया।

मोहजुद्दीन बहरान : (ई.स. १२३९-४२) ने शमसुद्दीन के राज्यकाल में भारत में घुसे हुए मुगलों को लाहौर से भगाया । इसके बाद इसका भाई **अलाउद्दीन** मसाऊद ई.स. १२४२ में बादशाह बना । यह विषयी था अत: इसके चाचा नासीरुद्दीन ने इसे ई.स. १२४६ में भ्रष्ट किया और वह स्वयं शासक बना । यह सादगीपरस्त, मिहनतकश और एकपत्नीव्रती था । इसके बाद ई.स. १२६६ में **ग्यासुद्दीन बल्व** बादशाह बना । यह न्यायप्रिय और बुद्धिमान् था । इसने राज्य भर में शराब पीने का निषेध किया था । इसके बाद ई.स. १२८३ में **कैकुबाद** आया । जिसने छ वर्ष तक शासन किया । इसके साथ गुलाम वंश का अंत आया ।

खिलजी वंश

इसके बाद ई.स. १२८९ में **जलालुद्दीन** खिलजी दिल्ली की राजगद्दी पर आया । यह चतुर, दयालु और पराक्रमी था । इसने मुगलों को अपनी पुत्री देकर उन्हें मुसलमानधर्मी बनाया था । इसकी हत्या कर इसका भतीजा अलाउद्दीन ई.स. १२९८ में राजगद्दी पर बैठ गया ।

अलाउद्दीन खिलजी 'खूनी'

अलाउद्दीन खिलजी क्रोधी और निर्दय था । एक ही दिन में इसने तीस से चालीस हजार मुगलों को तलवार के घाट उतरवा दिया, जो नये मुसलमान बने थे । अत: यह खूनी कहलाया । चितौड की रानी पद्मिनी को पाने के लिए चितौड पर आक्रमण किया, जिसमें राणा भीमसिंह और हजारों सरदारों ने केशरिया किया तथा पद्मिनी ने भी हजारों क्षत्रियाणियों के साथ जौहर किया । रणथंभोर के राजा **हम्मीर** ने इसके किसी मुस्लिम अधिकारी को शरण दे दी थी । इस वृत्तान्त से आवेश में आकर इसने ई.स. १३०० में **रणथंभोर** को जीतने के लिए अपने सेनापति उगलखाँ को बडे सैन्य के साथ भेजा, जिसे हम्मीर के दण्डनायक कालूशाह ने मार डाला और पूरे सैन्य को पराजित किया । इससे अत्यन्त क्रुद्ध होकर ई.स. १३०१ में बादशाह स्वयं सैन्य के साथ चढ आया । एक वर्ष तक युद्ध चला जिसमें राणा हम्मीर ने दण्डनायक कालूशाह एवं हजारों शूरवीरों के साथ प्राणों की बाजी लगा दी किन्तु शरणागत को वापिस नहीं सौंपा । यह वृत्तान्त **'हम्मीर-हठ'** के नाम से प्रसिद्ध है ।

इसने अपने शासनकाल में पाटण, खंभात, सोमनाथ, कुंभारिया, तारंगा, जालोर, आबू, चन्द्रावती इत्यादि स्थानो को लूटा । वहाँ के मन्दिरों और मूर्तियों को तोडा। वडगच्छ के आ० श्री वज्रसेनसूरि के यौगिक चमत्कारों से बादशाह प्रभावित

हुआ था और अपने मन्त्री राणा सिहड द्वारा हार और विविध फरमान आचार्य श्री को भेंट किये थे। शायद यह घटना बादशाह की जीवन-सन्ध्या में घटी हो। गुजरात से आया हुआ एक ढेड, जिसका नया नाम **मलीक** खशरू काफिर था, अलाउद्दीन का बडा विश्वासपात्र था। इसने विषप्रयोग से ई.स. १३१६ में अलाउद्दीन को मार डाला और **मुबारक खिलजी** को बादशाह बनाया। यह अयोग्य था। इसे भी मारकर मलीकखुशरू 'नासिरुददीन' का नया नाम धारण- कर स्वयं ई.स. १३२० में बादशाह बना। इसे भी ई.स. १३२१ में मारकर ग्यासुद्दीन तुगलक, जो पंजाब का सूबेदार था, बादशाह बन बैठा। इस तरह खिलजी वंश का समूल नाश हुआ और तुगलकवंश ने उसका स्थान लिया।

तुगलक वंश

ग्यासुद्दीन तुगलक ने ई.स. १३२१ से १३२६ तक शासन किया। उसके बाद मुहम्मद तुगलक आया।

मुहम्मद तुगलक (ई.स. १३२६ से ई.स. १३५१)

मुहम्मद तुगलक दिल्ली से राजधानी देवगढ ले गया और पुनः दिल्ली ले आया । इस तरह जाने आने में मौसम की प्रतिकूलता, रास्ते की दूरी इत्यादि कारणों से बडी संख्या में सैनिक मर गये और खर्च भी काफी उठाना पडा । इसी तरह विविध असफलताओं के कारण इसका कोष खाली हो गया । अतः उसने तांबे के सिक्के ढलवाये । घर घर में टंक्शाल चालू हो गये । व्यापारी ऐसे सिक्के लेते नहीं थे । अतः व्यवहार और व्यापार चौपट हो गया । इसी कारण यह इतिहास में 'मूर्ख' कहलाया । इसकी निर्बलता से ई.स. १३३६ में विजयनगर में हिन्दू साम्राज्य की स्थापना हुई और ई.स. १३४३ में 'बहमनी' साम्राज्य बना । अब इसकी कुछ अच्छाइयों देखें ।

यह विद्वान्, कवि, लेखक, वक्ता और धर्मप्रिय था । इसके राज्यकाल में शिकार की मनाई थी । खरतरगच्छ के आ० श्री जिनप्रभसूरि, वडगच्छ के आ० श्री गुणभद्रसूरि, मदनसूरि और महेन्द्रसूरि को यह खूब मानता था । जिन-प्रतिमाओं को इसने वापिस लौटाया ।

फीरोजशाह तुगलक (ई.स. १३५१ से ई.स. १३८८)

मुहम्मद तुगलक के बाद उसका चचेरा भाई फीरोजशाह तुगलक दिल्ली का बादशाह बना । यह विद्वान्, दयालु और प्रजाप्रिय था । यह भरुच के महान् ज्योतिषी आ० **श्री मलयचन्द्रसूरि** को खूब मानता था । इसकी राजसभा के ज्योतिषियों के आग्रह से आ० **श्री महेन्द्रसूरि** ने **'यन्त्रराज'** नामक ज्योतिष का ग्रन्थ रचा था । शेठ महणसिंह की सत्यवादिता से प्रसन्न हो कर बादशाह ने स्वयं उसके घर जाकर कोटिध्वज लहराया था । इसी महणसिंह के घर पधारे हुए आ० श्री राजशेखरसूरि का बादशाह ने खूब सन्मान किया था । वडगच्छ के आ० गुणभद्रसूरि के शिष्य आ० श्री रत्नशेखरसूरि का उपदेश सुनकर बादशाह ने उनका भी खूब सत्कार किया था ।

फिरोजशाह के बाद क्रमशः उसका पौत्र ग्यासुद्दीन तुगलक, दूसरा पुत्र अबूबकर, तीसरा पुत्र मुहम्मद तुगलक (दूसरा), इसका पुत्र हुमायु, सिकन्दर और मुहम्मद तुगलक (तीसरा) ने अल्पकाल ई.स. १३८८ से १३९८ तक राज्य किया ।

ई.स. १३९८ में तैमूरलंग ने आक्रमण कर मुहम्मद तुगलक को जीत लिया । इस प्रकार तुगलक वंश का अन्त हुआ और तैमूरलंग दिल्ली का बादशाह हुआ ।

तैमूरलंग

ई.स. १३९८ में यह समरकन्द से भारत पर चढ आया और मुहम्मद तुगलक को जीतकर दिल्ली का बादशाह बना । यह एक पांव से लंगडा था । यह कुल ३५ युद्धों में लडा । इस समय मेवाड के महाराणा कुंभा शक्तिशाली राणा थे । ई.स. १४०५ में तैमूर बुखार से मर गया ।

तैमूर के बाद क्रमश: दौलतखां (ई.स. १४०५-१४१६), खीजरखां (ई.स. १४१६-१४२७), मुबारिक (ई.स. १४२७-३५) और मुहम्मद (ई.स. १४३५-५०) दिल्ली के बादशाह रहे । यह मुहम्मद विषयान्ध था अत: बहलोल लोदी स्वयं बादशाह बन बैठा । इस तरह लोदी वंश उदय में आया ।

लोदीवंश

लोदीवंश दिल्ली के राज्य पर करीब ७५ वर्ष रहा । क्रमश: बहलोल लोदी (ई.स. १४५०-१४८८), सिकन्दर लोदी (ई. १४८८-१५०७) और इब्राहीम लोदी (ई.स. १५०७-१५२६) बादशाह रहे ।

ई.स. १५२६ में तैमूर के वंशज बाबर ने भारत पर आक्रमण किया । पानीपत के मैदान में युद्ध में इब्राहीम लोदी को मार कर बाबर विजयी हुआ । इस तरह लोदी साम्राज्य का अन्त हुआ और मुगल साम्राज्य का उदय हुआ ।

संघवी आभू

थराद (बनासकांठा-गुजरात) निवास शेठ आभू और जिनदास दोनों भाई थे । शेठ आभू को 'पश्चिम का माण्डलिक' बिरुद प्राप्त था । यह बडा बहादुर था । रण-मैदान में अकेला ही हजारों के लिए पर्याप्त था, फिर भी सामायिक-प्रतिक्रमण, प्रभुपूजा वगैरह धर्म-क्रिया में एकाग्र हो जाता था ।

शेठ आभू ने शत्रुंजय महातीर्थ का छ'री पालित संघ निकाला था, जिसमें ७०० मन्दिर, ३६ आचार्य भगवंत, ४००० बैल गाडियाँ और बडी संख्या में हाथी, घोडे, ऊँट वगैरह थे । इस संघ में १२ करोड द्रव्य का व्यय हुआ था ।

शेठ आभू ने ३६० साधर्मिकों को अपने समान धनिक बना दिया था । तीन करोड टंक खर्च कर अनेक ग्रन्थ-भण्डारों की स्थापना की थी । सोने की स्याही से सभी आगम और काली स्याही से अन्य ग्रन्थ लिखवाये थे । अनेक मन्दिरों का निर्माण और जीर्णोद्धार, उपाश्रयों का निर्माण आदि धर्मकार्यों में करोडों की धनराशि व्यय की थी ।

संघवी आभू की साधर्मिक भक्ति भी बेजोड थी । एक बाद मांडवगढ का मन्त्री झांझन शेठ आभू की साधर्मिक-भक्ति की परीक्षा के लिए चतुर्दशी के दिन ३२००० यात्रिकों को लेकर थराद जा पहुँचा । शेठ आभू पौषध-व्रत में था । छोटे भाई जिनदास ने तीन घंटे में भोजन की संपूर्ण तैयारी करवाकर सभी साधर्मिकों को सोने-चांदी के थालों में जिमाया और वस्त्रादि से उनका सन्मान किया ।

झांझन तो इतनी सुन्दर व्यवस्था को देखते ही आश्चर्य चकित हो गया और अन्त में उसने क्षमा मांगकर शेठ आभू की साधर्मिक भक्ति की खूब प्रशंसा की । यह प्रसंग वि.स. १३५० के आसपास का है ।

आचार्य श्री सोमप्रभसूरि (सैंतालीसवें पट्टधर)

आ.श्री धर्मघोषसूरि के पट्टधर आ.श्री सोमप्रभसूरि हुए । इनका जन्म वि.सं. १३१०, दीक्षा वि.सं. १३२१, आचार्यपद वि.सं. १३३२ और स्वर्गवास वि.सं. १३७३ में हुआ ।

ये शान्त, आत्मगवेषी, विद्वान् और वादी थे । आपको एकादशांगी कंठस्थ थी । बाद में चितौड के ब्राह्मणों को पराजित किया था ।

आपश्री ने कोंकण में अतिवृष्टि और राजस्थान में शुद्ध जल की दुर्लभता के कारण साधुओं के विहार का निषेध किया था ।

वि.सं. १३३४ में कहीं कहीं वि.सं. १३५३ में शास्त्र-मर्यादा के अनुसार द्वितीय कार्तिक की पूर्णिमा को चातुर्मास पूरा होता था, परन्तु उसके पहिले ही जहाँ आप ठहरे थे उस भीलडीनगर (बनासकांठा-गुजरात) के भावी भंग को निमित्तज्ञान से जानकर प्रथम कार्तिक की चतुर्दशी को चातुर्मासिक प्रतिक्रमण करके दूसरे दिन आपने वहाँ से विहार कर दिया । अन्य गच्छीय जो आचार्य वगैरह वहाँ रहे उनको मुसीबत में पडना पडा ।

आप और खरतरगच्छ के आ. श्री जिनप्रभसूरि के बीच गहरा प्रेम था । ये जब पाटण पधारे तब आपके साथ ही ठहरे । परस्पर के गुणानुराग से स्नेह बढता रहा । आ.श्री जिनप्रभसूरि ने पौषधशाला में चूहों का उपद्रव था जिसे मन्त्र-बल से अटका दिया । सभी साधु आश्चर्य-चकित हो गये ।

एक बार देवी पद्मावती ने आ. श्री जिनप्रभसूरि से कहा- दिन प्रतिदिन तपागच्छ का उदय होगा । अतः आप अपने स्तोत्र तपागच्छ के आ.श्री सोमप्रभ-सूरि को देदें । आ.श्री ने अपने सैकडों स्तोत्र आपको दे दिये ।

'सविस्तर यतिजीतकल्पसूत्र' अनेक आराधनासूत्र, यमकमय अट्ठाईस जिन-स्तुतियाँ आदि आपकी ग्रन्थ रचनाएँ हैं ।

आचार्य श्री वर्धमानसूरि

ये बडे तपस्वी थे । इनके उपदेश से महामात्य वस्तुपाल ने शंखेश्वर तीर्थ का संघ निकाला और जीर्णोद्धार करवाया था । महामात्य वस्तुपाल और तेजपाल की मृत्यु से इन्हें बडा दुःख हुआ और अखंड रीति से वर्धमान तप करने लगे जो करीब पन्द्रह वर्ष चला । वि.सं. १३१९ में आबू तीर्थ पर प्रतिष्ठा कर संघ के साथ शंखेश्वर जाते समय रास्ते में कालधर्म पाकर ये शंखेश्वर तीर्थ के अधिष्ठायक बने ।

सेठ समराशाह और शत्रुंजय महातीर्थ का पन्द्रहवां उद्धार

दिल्ली के बादशाह अलाउद्दीन खिलजी के सुबेदार अलिफ खाँ ने वि.सं. १३५१ में गुजरात में मुसलमान राज्य की स्थापना की । अनेक मन्दिरों और प्रतिमाओं का विनाश किया । पाटण के शेठ गोसल को शत्रुंजय तीर्थ के भंग

से बडा आघात लगा। इसी समय आ.श्री सिद्धसेन से शत्रुंजय तीर्थ के भूतकालीन उद्धारों की बात सुनकर शेठ गोसल ने अपने पुत्र समराशाह को आज्ञा दी कि वह शत्रुंजय तीर्थ का उद्धार करावे। समराशाह ने पिता की आज्ञा सिर पर चढाई और गुरु भगवंत के पास जाकर प्रतिज्ञा की कि जब तक शत्रुंजय तीर्थ का उद्धार न करा सकूँ तब तक हमेशा कम से कम बियासणा का पच्चक्खाण, भूमिसंथारा, एक विगइ का त्याग इत्यादि रखूंगा।

दूसरी तरफ समराशाह को उसके शुद्ध व्यवहार से पाटण में सर्वमान्य देखकर अलिफखाँ उस पर प्रसन्न रहता था और उसकी प्रत्येक बात को बडे ध्यान से सुनता था। एक दिन समराशाह ने सूबेदार को मीठी-मीठी बातों से प्रसन्न कर शत्रुंजय तीर्थ के उद्धार का फरमान लिखवा लिया। इतना ही नहीं किन्तु सौराष्ट्र के हाकिम मलिक बहराम पर आज्ञापत्र भी लिखवाया कि वह तीर्थ उद्धार के कार्य में सहयोग दे।

कुछ ही समय में समराशाह ने पर्याप्त द्रव्य-व्यय से शत्रुंजय तीर्थ का उद्धार करवाया और वि.सं. १३७१ में प्रतिष्ठा करवाई जो पन्द्रहवें उद्धार के रूप में प्रसिद्ध है।

बाद में दिल्ली के बादशाह ने समराशाह को अपने पास बुलाकर व्यापारी-मण्डल के प्रमुख पद पर नियुक्त किया। दिल्ली दरबार में समराशाह का बडा प्रभाव था। बादशाह ने पांडु देश के राजा वीरवल्लभ और ग्यारह लाख लोगों को कैद कर लिया था, जिन्हें समराशाह ने छुडाया और वीरवल्लभ को पुनः राजगद्दी पर बिठाया। इसीसे समराशाह को 'राजस्थापनाचार्य' का बिरुद मिला था।

आचार्य श्री रत्नाकरसूरि

बृहत्पौषधशाला के ४९ वें पट्टधर आ.श्री रत्नाकरसूरि के वि.सं. १३७१ में अपने प्रवचन में अनुक्रम से पांचवें परिग्रह-विरमण व्रत को विस्तृत विवेचन से समझाने पर भी धोलका निवासी एक श्रावक समझ नहीं पा रहा था। बार-बार नहीं समझने का असंतोष व्यक्त कर रहा था। प्रवचन के बाद आचार्य श्री इसका कारण ढूंढते-ढूंढते आत्म-गवेषण में लग गये और इन्हें अपनी ही भूल नजर आई कि मैं स्वयं इस व्रत को समझ नहीं पाया हूँ और हीरा, रत्न, मणि आदि जवाहरात

को अपने पास लंबे समय से छिपाकर रखे हुए है अर्थात् मैं स्वयं परिग्रहचारी हूँ तो इसे अपरिग्रहव्रत कैसे समझाऊँ ? बस ! अपने पास के जवाहरात को कूडे में फेंक दिया । इस प्रकार आपने शिथिलाचार का त्याग किया और उग्रविहारी बने । आपने आत्मनिंदागर्भित 'रत्नाकरपञ्चविंशति' की रचना की जो लोकप्रिय है । वि.सं. १३८४ में आपका स्वर्गवास हुआ ।

आचार्य श्री सोमतिलकसूरि (अडतालीसवें पट्टधर)

आ.श्री सोमप्रभसूरि के पट्टधर श्री सोमतिलकसूरि आये । आपका जन्म वि.सं. १३५५, दीक्षा वि.सं. १३६९, आचार्यपद वि.सं. १३७३ और स्वर्गवास वि.सं. १४२४ में हुआ ।

'बृहद् नव्यक्षैत्रमास, 'सत्तरियसयठाणं' आदि आपकी ग्रन्थ-रचनाएँ है ।

शेठ जगत्सिंह

सेठ जगत्सिंह देवगिरि (दौलताबाद) का करोडपति व्यापारी था । प्रकृति से उदार था । इसके घर-मन्दिर में रत्न की अद्‌भुत प्रतिमा थी । शेठ ने ३६० साधर्मिकों की अपने समान वैभव वाले बना दिया था । प्रतिदिन इनमें से एक की तरफ से महापूजा और साधर्मिकवात्सल्य इत्यादि धर्म-कार्य होते थे । एक साधर्मिक वात्सल्य में ७२००० द्रव्य का व्यय होता था ।

प्रतिज्ञापालन

शेठ की प्रतिदिन सुबह-शाम प्रतिक्रमण करने की प्रतिज्ञा थी । एक बार किसी आरोप में बादशाह ने हाथों में हथकडी और पाँवों में जंजीरों से जकड कर शेठ को कारागृह में डलवा दिया । सन्ध्या समय कारागृह के रक्षक को एक टंक प्रमाण सुवर्ण देना कबूल कर दो घडी के लिए हथकडी खुलवाई और प्रतिक्रमण किया । इसी प्रकार एक महीने में साठ टंक प्रमाण सुवर्ण प्रतिक्रमण के लिए दिया । प्रतिज्ञापालन में शेठ की ऐसी दृढता जानकर बादशाह को संतोष हुआ और उसे कारावास से मुक्त कर दिया । इतना ही नहीं खूब धन भेंट दिया और शेठ का पूर्व से भी अधिक सन्मान करने लगा ।

संघ-भक्ति

एक बार आ. श्री सोमतिलकसूरि दौलताबाद पधारे । तब अपने शिष्य-परिवार और संघ के साथ जगत्सिंह के गृह-मन्दिर के दर्शन करने पधारे । शेठ ने आचार्य भगवन का बडा सत्कार-सन्मान किया । बाद में आचार्य श्री को ७०० कीमती वस्त्र भेंट देने लगा, किन्तु 'क्रीत दोष' के भय से आचार्य श्री ने नहीं स्वीकारे । तब ये सभी वस्त्र शेठ ने साधर्मिकों को ७०० सोनामोहरों और तांबूल के साथ भेंट कर दिये ।

सत्यवादी महणसिंह

सेठ जगत्सिंह का पुत्र महाणसिंह दिल्ली में जा बसा । किसी चुगलखोर ने बादशाह फिरोजशाह तुगलक को कहा- जहाँपनाह ! महाणसिंह पच्चास लाख का आसामी है, अतः उचित शिक्षा करें ।

बादशाह ने महणसिंह को अपने पास बुलाकर संपत्ति के विषय में पूछा । दूसरे दिन महणसिंह ने राजसभा में आकर कहा- जहाँपनाह ! मेरे पास ८४ लाख द्रव्य है । महणसिंह की सत्यवादिता से बादशाह इतना खुश हुआ कि १६ लाख राज्य भंडार से मंगवाकर महणसिंह को दिये और स्वयं महणसिंह के घर जाकर 'यह तेरी सच्चाई का इनाम है' कहते हुए कोटिध्वज लहराया ।

आचार्य श्री रत्नशेखरसूरि

नागौरी तपागच्छ-शाखा के आ. श्री रत्नशेखरसूरि का जन्म वि.सं. १३७२, दीक्षा वि.सं. १३८५ और आचार्यपद वि.सं. १४०० में हुआ । आप बडे विद्वान् थे । आपके उपदेश से फिरोजशाह तुगलक प्रभावित था । आपको 'मिथ्यात्वान्धकार-नभोमणि' का बिरुद प्राप्त था । आपकी ग्रन्थरचना निम्न प्रकार है :- वि.सं. १४१८ में 'सिरिसिरिवालकहा', दिनशुद्धिदीपिका', वि.सं. १४४७ में 'छन्दोरत्नावली', 'षड्दर्शनसमुच्चय', वि.सं. १४४७ में 'गुणस्थानकक्रमारोह स्वोपज्ञवृत्ति', 'संबोधसित्तरी वृत्ति इत्यादि ।

आचार्य श्री देवसुन्दरसूरि (उनचासवें पट्टधर)

कोडिबारमें आ. श्री सोमतिलकसूरि ने अंबिकादेवी के सामने बैठकर 'गच्छनायक-पद' के लिए कौन योग्य है ?' यह जानने के लिए ध्यान किया । तब अंबिकादेवी ने कहा- क्षुल्लक देवसुन्दर गच्छनायक पद के लिए योग्य है । आचार्य श्री ने इन्हें गच्छनायक बनाया ।

आ.श्री देवसुन्दरसूरि का जन्म वि.सं. १३९६, दीक्षा वि.सं. १४०४ आचार्य-पद वि.सं. १४२० और स्वर्गवास वि.सं. १४८२ अथवा १४९२ में हुआ ।

पाटण में ३०० योगियों के गुरु सिद्धयोगी कणयरीपा ने समाधि लेने से पूर्व अपने मुख्य शिष्य उदीयपा से कहा- जैन श्वेतांबर साधु देवसुन्दर बडा योगी है । उसके पांव में पद्म, दण्ड, चक्र आदि शुभ चिह्न हैं । वह महात्मा और देवांशी पुरुष है । अत: वंदनीय है । तुम सभी उसका सत्कार-सन्मान करना ।

बाद में एक बार उदयीपा अपने परिवार और बडे जनसमूह के साथ पौषधशाला में आया और आचार्य भगवंत को साष्टांग नमस्कार कर उनकी खूब प्रशंसा की । अपने गुरु का अन्तिम आदेश कह सुनाया कि आप युगप्रधान हैं और मोक्षदाता हैं । इस घटना से आचार्य श्री का प्रभाव बडा और जैन धर्म की खूब प्रभावना हुई ।

आचार्य श्री के पांच शिष्य थे जिनके नाम आ. श्री ज्ञानसागरसूरि, आ. श्री कुलमण्डनसूरि, आ. श्री गुणरत्नसूरि, आ. श्री सोमसुन्दरसूरि और आ.श्री साधुरत्नसूरि थे ।

आ. श्री ज्ञानसागरसूरि ने आवश्यक और ओधनिर्युक्ति पर अवचूरियाँ लिखी और अनेक स्तोत्रों की रचना की ।

आ. श्री कुलमण्डनसूरि ने 'सिद्धान्तालापकोद्धार', 'विचारामृतसंग्रह', कल्पसूत्र की अवचूरि और अनेक 'चित्रकाव्यस्तवों' की रचना की ।

आ. श्री गुणरत्नसूरि ने 'क्रियारत्नसमुच्चय' 'षड्दर्शनसमुच्चय-बृहद्वृत्ति' आदि ग्रन्थ रचे ।

आ. श्री साधुरत्नसूरि ने 'यतिजीतकल्पवृत्ति' की रचना की । इस तरह आचार्य श्री देवसुन्दरसूरि का शिष्य-समुदाय बडा विद्वान् था । इनके गच्छ में अनेक प्रावचनिक और लब्धिधर थे । महोपाध्याय जिनसुन्दर मणि, पं. उदयरत्न गणि वगैरह ग्यारह अंगों के पाठी थे । पं. सर्ववल्लभगणि अच्छे निमित्तवेत्ता थे । पं. शान्तिचन्द्र-गणिराज छ मासी तप करने वाले महातपस्वी थे ।

आ. श्री देवसुन्दरसूरि स्वयं विद्वान् थे । एक बार जैन धर्म का कट्टर विरोधी बडौदा का मन्त्री सारंग किसी देव के कहने से सिद्धपुर आया और आचार्य श्री को वेद-वेदान्त सम्बन्धी अनेक प्रश्न पूछे । आचार्य श्री ने प्रत्येक प्रश्न का जो-जो उत्तर दिया उसे सुनकर सारंग जैनधर्मी बना ।

आचार्य श्री सोमसुन्दरसूरि (पचासवें पट्टधर)

आ. श्री देवसुन्दरसूरि के पट्ट पर आ. श्री सोमसुन्दरसूरि आये । इनका जन्म वि.सं. १४३०, दीक्षा वि.सं. १४३७, आचार्य पद वि.सं. १४५७ और स्वर्गवास वि.सं. १४९९ में हुआ ।

आप विद्वान्, उग्र संयमी, सफल उपदेशक और सौभाग्यशाली थे । आपकी आज्ञा से १८०० क्रियापात्र साधु विचरते थे । आपने योगशास्त्र, उपदेशमाला, षडावश्यक, नवतत्त्वादि ग्रन्थों पर बालावबोध भाष्य लिखे तथा अनेक ग्रन्थों पर अवचूरियाँ लिखीं ।

आपने वि.सं. १४९५ में राणकपुर के श्रीधरणचतुर्मुख विहार की प्रतिष्ठा की । आपश्री के उपदेश से ईडर के संघवी गोविन्द ने तारंगा तीर्थ का जीर्णोद्धार करवाया जिसकी प्रतिष्ठा भी आपने की । आप ही के उपदेश से मोटा पोसीना और मक्षीजी (म.प्र.) विगैरह तीर्थो की स्थापना हुई ।

चितौड के राणा मोकलजी और कुंभा आपके भक्त थे । राणा कुंभा ने राणकपुर के मन्दिर में दो स्तम्भ बनवाये ।

आपके शिष्य आ.श्री जयचन्द्रसूरि अपरनाम जयसुन्दरसूरि ने वि.सं. १५०४ में शिवगंज (राज.) के समीप जाकोडा तीर्थ की स्थापना की ।

आपके शिष्य आ. श्री भुवनसुन्दरसूरि भी बडे विद्वान् थे। इन्होंने 'महाविद्या-विडम्बन' का टिप्पन, अर्थदीपिका और परब्रह्मोत्थापनवादस्थलादि ग्रन्थ रचे।

आपके ही शिष्य आ. श्री जिनसुन्दरसूरि ने 'दीपावलीकल्प रचा।

आ. श्री जयचन्द्रसूरि के शिष्य प. जिनहर्षगणि अपरनाम जिनहंसगणि भी बडे विद्वान् थे। इनकी ग्रन्थरचना निम्न प्रकार है :- रयणसेहरनरवईकहा, सम्यक्त्व-कौमुदी, वस्तुपालचरित महाकाव्य, विंशतिस्थानक प्रकरण, प्रतिक्रमण-गर्भहेतु, आरामशोभा कथा इत्यादि।

सोनी संग्रामसिंह

खंभात के सोनी सारंग का वंशज महादानी नरदेव का पुत्र संग्रामसिंह बारह व्रतधारी श्रावक और परस्त्री-सहोदर था। यह मांडवगढ के बादशाह मुहम्मद खिलजी का खजानची और बाद में दीवान बना। बादशाह ने इसे 'जगत्-विश्राम' का बिरुद दिया था। यह विद्वान् और कवि था। इसने 'बुद्धि-सागर' ग्रन्थ की रचना की।

वि.सं. १४७० में संग्रामसिंह ने आ. श्री सोमसुन्दरसूरि का मांडवगढ में चातुर्मास करवाया था। तब भगवती सूत्र के वांचन में प्रत्येक बार 'गोयमा' शब्द के श्रवण में स्वयं ने एक, इसकी माँ ने आधी और पत्नी ने पाव सोनामोहर कुल (३६०००+१८०००+९०००) ६३००० सोनामोहर अर्पण की थी।

संग्रामसिंह ने मांडवगढ में भगवान् सुपार्श्वनाथ का, मक्षीजी में भगवान् पार्श्वनाथ का, भेई, मन्दसौर, धार वगैरह स्थानों में १७ नये मन्दिर बनवाये और ५१ मन्दिरों का जीर्णोद्धार करवाया था।

शेठ धरणशाह और राणकपुर-तीर्थ

शेठ मांडण अपरनाम सांगण सरहडिया गोत्र का पोरवाल नांदिया (जि. सिरोही) निवासी जैन था। यह संपन्न और धर्मनिष्ठ था। इसके दो पुत्र थे, जिनका नाम कुंवरपाल और निंबा था। इन्होंने वि.सं. १४६५ में पिन्डवाडा के जिनमन्दिर का जीर्णोद्धार करवाया था।

कुंवरपाल के तीन पुत्र थे, जिनके नाम समरथमल, संघवी रत्नाशाह और संघवी धरणशाह था।

धरणशाह ने २१ वर्ष की उम्र में सिद्धगिरि तीर्थ का बडा छ 'री' पालित संघ निकाला था, जिसमें बादशाह और अनेक मन्त्री शामिल थे। धरण ने अपनी अठारह वर्षीया पत्नी के साथ आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत स्वीकार कर संघ-माल पहिनी थी।

एक बार मांडवगढ के बादशाह हुसंगशाह का शाहजादा गिजनीखाँ भागकर आया जिसे धरणशाह ने शरण दी। इस प्रसंग से सिरोही का राजा नाराज हो गया। अत: धरण सिरोही राज्य को छोडकर अपने बडे भाई रत्नाशाह के साथ मेवाड के राणा कुम्भा द्वारा नये बसाये गाँव धाणेराव में जाकर रहा और राणा का अतीव प्रीतिपात्र बना।

एक बार धरण ने स्वप्न में नलिनीगुल्म-विमान देखा और ऐसा ही भव्य जिन-प्रासाद बनवाने का मन ही मन में निर्णय लिया। कालक्रम से राणकपुर में १४४४ स्तंभों से भव्य तीन मंजिल का ४५ फुट ऊंचा जिन-प्रासाद बनकर तैयार हो गया।

इस मन्दिर की विशेषता यह है कि मन्दिर के किसी भी दरवाजे से और ७२ देवकुलिकाओं में से किसी भी देवकुलिका के द्वार पर खडे होकर दर्शक बिना किसी अवरोध से मूलनायक भगवान् के दर्शन कर सकते है।

वि.सं. १४९६ में युगप्रधान आ. श्री सोमसुन्दरसूरि ने इस भव्य जिनमन्दिर की प्रतिष्ठा की। आज भी यहाँ प्रतिवर्ष लाखों यात्री मन्दिर की भव्यता एवं स्थापत्य की विशेषता के दर्शन हेतु आते हैं।

आचार्य श्री मुनिसुन्दरसूरि (इक्यानवें पट्टधर)

आ. श्री सोमसुन्दरसूरि के पट्ट पर उनके शिष्य आ. श्री मुनिसुन्दरसूरि आये। आपका जन्म वि.सं. १४३६, दीक्षा वि.सं. १४४३, आचार्यपद वि.सं. १४७८ और स्वर्गवास वि.सं. १५०३ में हुआ। ये प्रखर विद्वान् और वादी थे इन्हें 'काली सरस्वती' और 'वादिगोकुलसाँढ' और 'सहस्त्रावधानी' के बिरुद प्राप्त थे। आपसे

अनेक राजा महाराजा प्रभावित थे और आपके उपदेश से अपने-अपने राज्यों में 'अमारि' का प्रवर्तन कराते थे ।

आपने उपद्रव-निवारण के लिए 'संतिकर' स्तोत्र की रचना की । 'उपदेश-रत्नाकर', 'जयानन्दकेवलि-चरित', 'मित्रचतुष्क-कथा', 'शान्तसुधारस', 'अध्यात्म-कल्पद्रुम' इत्यादि आपकी ग्रन्थरचना है ।

आपके शिष्य पं. शुभशीलगणि अपरनाम शुभसुन्दर गणि विद्वान् और शीघ्र-कवि थे । वि.सं. १४९२ से वि.सं. १५४० तक इन्होंने निम्नलिखित ग्रन्थों की रचना की :-

विक्रमचरित, पुण्यधननृपकथा, प्रभावकचरित, भरहेसरबाहुबलिवृत्ति, शत्रुंजयकल्प स्वोपज्ञवृत्ति, शालिवाहननृपचरित, पुण्यसारकथा, स्नात्रमाहात्म्य, भक्तामरस्तोत्रमाहात्म्य इत्यादि ।

आचार्य श्री रत्नशेखरसूरि (बावनवें पट्टधर)

आ. श्री मुनिसुन्दरसूरि के पट्टधर आ. श्री रत्नशेखरसूरि का जन्म वि.सं. १४५७ मतान्तर से वि.सं. १४५२ में, दीक्षा वि.सं. १४६३, आचार्यपद वि.सं. १५०२ और स्वर्गवास वि.सं. १५१७ में हुआ ।

आप विद्वान् और वादी थे । आपको 'बाल-सरस्वती' का बिरुद था । आपके 'श्राद्धप्रतिक्रमणसूत्रवृत्ति', 'श्राद्ध-विधि स्वोपज्ञवृत्ति' और 'आचार-प्रदीप' प्रसिद्ध ग्रन्थ है ।

लुंका-मत प्रवर्तन

आपके समय में वि.सं. १५०८ में जिनप्रतिमा का विरोधी 'लुंका मत' प्रवृत्त हुआ । इस मत में 'भाणा' नामक व्यक्ति ने वि.सं. १५३३ में प्रथम साधुवेश धारण किया ।

आ. श्री लक्ष्मीसागरसूरि (तिरेपनवें पट्टधर)

आ. श्री रत्नशेखरसूरि के पट्ट पर आ. श्री लक्ष्मीसागरसूरि आये । इनका जन्म वि.सं. १४६४, दीक्षा वि.सं. १४७७, आचार्यपद वि.सं. १५०८ और स्वर्गवास वि.सं. १५४७ में हुआ । आप प्रकृति के शान्त और तपस्वी थे । आपके नेतृत्वकाल में नये ५०० साधु हुए थे । वि.सं. १५२३ में आपने मातर तीर्थ की स्थापना की ।

आपके शिष्य पं. लावण्यसमयगणि पर १६ वर्ष की उम्र में सरस्वती प्रसन्न हुई । इसीलिए इनके उपदेश से अनेक राजा महाराजा प्रभावित थे एवं इन्होंने लोकभाषा में सिद्धान्त चोपाई (लोंकामतसमीक्षा), गौतम-पृच्छा, अनेक रास-छंद-स्तवन और सज्झाय रची ।

आचार्य श्री सुमतिसाधुसूरि (चौवनवें पट्टधर)

आ. श्री लक्ष्मीसागरसूरि के पट्टधर श्री सुमतिसाधुसूरि ने 'दशवैकालिकसूत्र' पर लघुटीका रची थी, जो आज भी प्रसिद्ध है । आपका जन्म वि.सं. १४९४, दीक्षा वि.सं. १५११, आचार्य पद वि.सं. १५१७ और स्वर्गवास वि.सं. १५८१ में हुआ ।

आचार्य श्री हेमविमलसूरि (पचपनवें पट्टधर)

आ. श्री सुमतिसाधुसूरि के पट्टधर आ. श्री हेमविमलसूरि हुए । इनका जन्म वि.सं. १५२० में, दीक्षा सं. १५२७, आचार्यपद वि.सं. १५४८ और स्वर्गवास वि.सं. १५८३ में हुआ । आपके समय में साधु-समुदाय में काफी शिथिलता फैल गई थी । फिर भी आपकी आज्ञा में रहने वाले साधु आचार-संपन्न थे । इसी कारण लुंकागच्छ के ऋषि हाना, ऋषि श्रीपति, ऋषि गणपति आदि अनेक आत्मार्थी लुंका मत का त्याग कर आपकी आज्ञा में आये थे ।

कडुआ-मत, बीजा-मत और पायचंदगच्छ का प्रवर्तन

आपके समय में 'आजकल शास्त्रोक्त साधु दृष्टिगोचर नहीं होते' इस प्रकार की प्ररूपणा करने वाले कटुक नामक त्रिस्तुतिक गृहस्थ से वि.सं. १५६२ में

'कडुआ-मत' की उत्पत्ति हुई ।

वि.सं. १५७० में लुंकामत से पृथक् होकर विजय ऋषि ने 'बीजा मत' प्रचलित किया ।

वि.सं. १५७२ में नागोरी तपागच्छ से निकलकर उपाध्याय पार्श्वचन्द्र ने अपने नाम से मत चलाया जो 'पायचंद गच्छ' के नाम से प्रसिद्ध है ।

अचलगढ-तीर्थ

राणकपुर मन्दिर के निर्माता संघवी धरण शाह के बडे भाई संघवी रत्नाशाह के पांचवें पुत्र का नाम संघवी सालिग था । सं. सालिग का पुत्र सं. सहसा मालवा के बादशाह ग्यासुद्दीन का प्रीतिपात्र महामात्य था । सं. सहसा ने कमल कलश शाखा के आ. श्री सुमतिसुन्दरसूरि के उपदेश से आबू पर्वत के ऊँचे शिखर अचलगढ पर दोमंजिली भव्य चतुर्मुखजिनप्रासाद बनवाया । वि.सं. १५६६ में आ. श्री जयकमलसूरि से प्रतिष्ठिा करवाई जिस में वि.सं. १५१८ और वि. सं. १५२९ में आ.श्री लक्ष्मीसागरसूरि द्वारा प्रतिष्ठित १४४४ मन (१ मन = २० किलो) की पित्तलमयी प्रतिमाएँ बिठाई।

आचार्य श्री आनन्दविमलसूरि (छप्पनवें पट्टधर)

आ. श्री हेमविमलसूरि के पट्टधर आ. श्री आनन्दविमलसूरि हुए । इनका जन्म वि.सं. १५४७ में, दीक्षा वि.सं. १५५२ में, सूरिपद वि.सं. १५७० और स्वर्गवास वि.सं. १५९५ में हुआ ।

आपके समय में एक ओर साधुओं में शिथिलता बढ गई थी, दूसरी ओर प्रतिमा-विरोधी लुंकामत तथा साधु-विरोधी कडुआमत के अनुयायिओं का प्रचार बढ रहा था । इस परिस्थिति में आपने वि.सं. १५८२ में शिथिलाचार का त्याग रूप क्रियोद्धार किया । उसमें संविग्न साधुओं ने साथ दिया । आपकी इस त्यागवृत्ति से प्रभावित हो कर अनेक गृहस्थों ने 'लुंकामत' और 'कडुआ मत' का त्याग किया तथा अनेक आत्माएँ आपके पास दीक्षित हुई ।

४७ वें पट्टधर आ. श्री सोमप्रभसूरि ने जेसलमेर वगैरह राजस्थान की भूमि में शुद्ध जल की दुर्लभता के कारण साधुओं का विहार निषिद्ध किया था,

वहाँ भी कुमत के प्रचार के भय से आपने पुनः विहार शुरु करवाया । वहाँ प्रथम महोपाध्याय विद्यासागरगणि को भेजा जो अपने प्रारंभ काल से ही छट्ठ-छट्ठ के पारणे आयंबिल करते थे । उन्होंने जेसलमेर आदि स्थली-प्रदेश में खरतरों को, मेवाड में बीजा-मतियों को और सौराष्ट्र के मोरबी आदि स्थानें में लुंकामतियों को शुद्ध धर्म का उपदेश देकर उनमें सम्यक्त्व के बीज बोये । वीरमगाँव में पार्श्वचन्द को बाद में निरुत्तर कर बहुत से लोगों को धर्म में स्थिर किया । इसी प्रकार मालवा प्रदेश में भी उपदेश देकर गृहस्थों को धर्म में स्थिर किया ।

महो० विद्यासागर गणि की क्षमा और सहिष्णुता अद्भुत थी । तेले के पारणे में किसी विरोधी गृहस्थ ने भिक्षा में राख दी, जिसे आप पानी में घोल कर पी गये और दूसरे तेले का पच्चक्खाण किया । इससे विरोधियों के दिल द्रवित हो गये और उन्होंने शुद्ध धर्म को स्वीकार किया ।

आ० श्री आनन्दविमलसूरि ने क्रियोद्धार के बाद १४ वर्ष तक कम से कम छट्ठ के पारणे छट्ठ तप किया । अनेक विकृष्ट तप करके अन्त में नौ दिन के अनशनपूर्वक वि.सं. १५९६ में स्वर्गवासी हुए ।

शाहु खीमा देदराणी

देदराणी गोत्र का खीमा हडाला का निवासी था । गर्भश्रीमन्त होने पर भी इसकी सादगी, पितृभक्ति और धर्म-प्रीति असाधारण थी ।

वि.सं. १५३९-४० के दो वर्ष गुजरात और मालवा में भयंकर दुष्काल पडा । एक वर्ष किसी प्रकार बीत गया, किन्तु दूसरा वर्ष कैसे बिताया जाय, यह विकट समस्या थी ।

चांपानेर में गुजरात के बादशाह मुहम्मद बेगडा ने जैनों के भोजक को बुलवाकर कहा- तू हमेशा कहता है कि शाह तो (पूरे) शाह हैं और बादशाह तो पादशाह (पाव शाह) हैं अर्थात् महाजनों से हमें ओछा बताता है । अब तेरी बात की परीक्षा का समय आ गया है, क्योंकि गुजरात में दुष्काल है । मेरी प्रजा भूखी मर रही है । देखना है तेरे शाह अब क्या करते हैं ?

बादशाह के इस कथन से भोजक एकबार तो घबडाया फिर भी उसने चांपानेर के महाजनों को इकट्ठा कर बादशाह की बात कही और उन्हें 'शाह'

बिरुद की रक्षा के लिए उत्साहित किया ।

चांपानेर के जैनों ने पूरे वर्ष के लिए गुजरात की प्रजा की अन्न और वस्त्र की पूर्ति की योजना बनाई । प्रथम अपने नगर में चंदा इकट्ठा कर खंभात, धंधुका, अहमदाबाद, पाटण आदि शहरों की ओर जाने के लिए रवाना हुए, किन्तु उनको बीच में ही हडाला गाँव के बाहर खीमा मिला । खीमा उन्हें अपने घर ले गया और अपने पिता की आज्ञा से उन्हें कहा- आपको कहीं जाने की जरुरत नहीं । आपका यह छोटा भाई दुष्काल की समस्या हल करने के लिए पूरा द्रव्य दे देगा ।

यह बात चांपानेर के अगुआओं ने बादशाह को कही और पर्याप्त द्रव्य बैलगाडियों द्वारा हडाला से चांपानेर पहुँच गया । इस प्रकार वि.सं. १५४० का दुष्काल पार हुआ और वि.सं. १५४१ में सुकाल हो गया । बादशाह न प्रसन्नता पूर्वक जैनों के शाह बिरूद को बादशाह बिरूद से ऊचा माना।

आ. श्री विजयदानसूरि (सत्तावनवें पट्टधर)

आ० श्री आनन्दविमलसूरि के पट्ट पर आये आ० श्री विजयदानसूरि का जन्म वि.सं. १५५३, दीक्षा वि.सं. १५६२, आचार्य पद वि.सं. १५८७ और स्वर्गवास वि.सं. १६२२ में हुआ ।

आपने अनेक स्थानों में सैकडों जिन-बिम्बों की प्रतिष्ठाएँ की । आपके उपदेश से बादशाह मुहम्मद के मंत्री गुलजार ने छह महीने तक श्री शत्रुंजय तीर्थ का 'कर' माफ करवाया था और सर्वसंघ को गाँवों और नगरों से आमंत्रित कर उनके साथ यात्रा की थी ।

दोशी कर्माशाह और शत्रुंजय तीर्थ का सोलहवां उद्धार

उदयपुर के दोशी तोलाशाह के पुत्र कर्माशाह ने आ० श्री विजयदानसूरि और उपा० श्री विनयमंडन के उपदेश से शत्रुंजय तीर्थ का उद्धार करवाया और वि.सं. १५७७ में बृहत्पौषधशाला की आ० श्री विद्यामंडनसूरि ने प्रतिष्ठा की ।

जगद्गुरु आ. श्री विजयहीरसूरि (अठ्ठावनवें पट्टधर)

आ० श्री विजयदानसूरि के पट्ट पर आ० श्री हीरसूरि बिराजमान हुए । आपका जन्म वि.सं. १५८३, दीक्षा वि.सं. १५९६, आचार्यपद वि.सं. १६०८ और स्वर्गवास

वि.सं. १६५२ में हुआ ।

आपने अनेक स्थानों में हजारों जिनबिम्बों की प्रतिष्ठाएँ कीं । आपके उपदेश से बादशाह अकबर ने अपने १२ सूबो में प्रतिवर्ष छह महीने अमारि-प्रवर्तन करवाया, "जजीया" कर बन्द कर दिया, अनेक बंदीजनों को और पशु-पक्षियों को मुक्त कर दिया, डाबर सरोवर पर शिकार एवं मछली पकडने को निषेध किया, निःसंतान मृतक का धन लेना बंद किया और स्वयं जो हमेशा पांच सौ गोरैया चकला की जीभ का नाश्ता करता था उसे बंद किया ।

आचार्य श्री के ज्ञान और संयम से आवर्जित होकर अपनी धर्मसभा 'दीन-ए इलाही' में इन्हें प्रथम कक्षा का सभ्य पद प्रदान किया था । इतना ही नहीं, आचार्य श्री को 'जगद्गुरु' के खिताब (पदवी) से सन्मानित किया था और एक बडा ग्रन्थभण्डार भेट किया था ।

लुंका मत के श्रीपूज्य मेघजी ऋषी आदि अनेक मुनियों ने आपके पास दीक्षा ली ।

आचार्य श्री राजविजयसूरि

आ० श्री राजविजयसूरि का जन्म अमदाबाद में वि.सं. १५५४, दीक्षा वि.सं. १५७१ आचार्यपद वि.सं. १५८४ और स्वर्गवास वि.सं. १६२४ में हुआ । वि.सं. १५८२ के क्रियोद्धार में आपने आ० श्री आनन्दविमलसूरि को पूरा साथ दिया था ।

आप प्रकाण्ड विद्वान् और वादी थे । आपके समय में एक दिगम्बर भट्टारक जीआजी उज्जयिनों में श्रावकों को अपने मत में खींच रहा था । उज्जैन के श्रावक मन्त्री ताराचन्द की प्रार्थना से और गच्छनायक आ० श्री विजयदानसूरि की आज्ञा से ७०० साधुओं को लेकर आपने मालवा की तरफ विहार किया । रास्ते में स्थान-स्थान पर दिगंबर मत का खंडन करते हुए और आपने पीछे साधुओं को छोडते हुए आपने ३०० साधुओं के साथ उज्जयिनी में बादशाही सन्मानपूर्वक प्रवेश किया । इससे दिगंबर भट्टारक के मन पर बडा प्रभाव पडा और अन्त में बिना वाद किये ही उज्जयिनी छोडकर चला गया । इस तरह आपने मालवा में विचर कर श्वेतांबर संघ को धर्म में स्थिर किया ।

महोपाध्याय श्री धर्मसागर गणि

महोपाध्याय श्री धर्मसागर गणि का जन्म वि.सं. १५९५ में नाडोल में हुआ था। आ० श्री विजयदानसूरि जी के पास वि.सं. १६११ में दीक्षा और वि.सं. १६५३ में स्वर्गवास हुआ।

आप बडे विद्वान् और प्रखर वादी थे। आपने मारवाड में खरतरगच्छ और गुजरात में कडूआ मत के अनुयायियों को शुद्धधर्मी बनाया। आपने मेडता में दो राजमान्य श्रावकों का क्षमापना द्वारा पच्चीस वर्ष पुराना प्राणघातक वैरभाव मिटाया। आपकी ग्रन्थरचना निम्न प्रकार है :- श्रीजंबूद्वीपप्रज्ञप्ति टीका, कल्प-किरणावली, कुमतिकुदालप्रवचनपरीक्षा, तपागच्छपट्टावली स्वोपज्ञटीकासहित नयचक्र, ईरियापथिकाषट्त्रिंशिकावृत्ति, औष्ट्रिकमतोत्सूत्रदीपिका, पर्युषणाशतक स्वोपज्ञवृत्ति, गुरुतत्त्वप्रदीपिका आदि।

हेमू विक्रमादित्य का उदय

मुगल साम्राज्य की स्थापना कर बाबर ई.सं. १५३० में मरा। उसका पुत्र हुमायू राजगद्दी पर आया जिसे अफगानशासक शेरशाह सूरि ने ई.सं. १५३६ में हराकर भारत से बाहर भगा दिया और शेरशाह स्वयं दिल्ली की गद्दी पर बैठ गया। ई.स. १५५५ में हुमायू ईरान के शाह की सहायता से शेरशाह के वंशजों को पराजित कर अपने साम्राज्य का पुनः स्वामी हुआ। ई.स. १५५६ में हुमायू की मृत्यु हुई तब अकबर पंजाब की तरफ था। अतः अकबर को दिल्ली का बादशाह घोषित कर तरादी बेगखाँ हाकिम बना।

इसी समय हेमू का उदय हुआ। यह जौनपुर का जैन व्यापारी था जो अपने मिलनसार स्वभाव, व्यवस्थाशक्ति और साहस से पूरी शासक के मन्त्री और सेनापति पद पर पहुँच गया था। इसने तरादी बेगखाँ को हराकर भगा दिया और स्वयं ने दिल्ली और आगरा पर अपना अधिकार कर लिया। यह सिर्फ छह महीने राज्य कर सका। अकबर का इसी हेमू के साथ ई.सं. १५५६ में युद्ध हुआ। जिसमें हेमू पराजित हुआ और बहरामखाँ द्वारा मारा गया। इस प्रकार अकबर का दिल्ली की राजगद्दी पर अभिषेक हुआ।

साहसी भैरवशाह

हुमायू के सौराष्ट्र पर के आक्रमण की यह हृदयद्रावक हकीकत है जो मुगलों के अत्याचारों की झांकी कराती है । आक्रमण के समय में लाखों लोगों को बन्दी बनाकर गुलाम के रूप में बेचने के लिए भेज दिया जाता था, जिनको पशुओं से भी बदतर हालत में रखा जाता था और वे हजारों की संख्या में मर जाते थे । ऐसे ही नौ लाख बन्दियों का एक झुण्ड खोजा मकीम के नेतृत्त्व में विक्रय के लिए उत्तर की तरफ भेजा गया था ।

इसी समय आ० श्री हीरविजयसूरि के श्रावक अलवर निवासी भैरवशाह की किसी निमित्त हुमायू ने अपनी मुद्रा सौंप दी थी । भैरवशाह ने शीघ्र साहस कर इन बन्दियों की मुक्ति का शाही फरमान तैयार किया और उस पर शाही मुद्रा लगाकर खोजा मकीम के हाथ में रख दिया । इस प्रकार सभी बन्दियों को मुक्त करा दिया । इतना ही नहीं, उन बंदियों को वस्त्र में बांधकर सोनामोहरें दी और उनकी रक्षा के लिए ५०० घुडसवार देकर उन्हें अपने-अपने स्थान पर पहुँचा दिया ।

बादशाह अकबर और पुनर्जन्म

हुमायू शेरशाह सूरि से पराजित होकर भाग गया था, तब अमरकोट के हिन्दू राजा के वहाँ अतिथि रही उसकी बेगम हमीदा ने ई.सं. २३-११-१५४२ के दिन एक बालक को जन्म दिया, जिसका नाम बदरुद्दीन अकबर रखा गया ।

अकबर के पूर्व जन्म का वृत्तान्त है कि वह प्रयाग में मुकुन्द ब्रह्मचारी नामक सन्यासी था, जिसके १४ शिष्य थे । एक बार इस सन्यासी ने हुमायू को शाही ठाठ से जाते देखकर दृढ संकल्प-निदान किया कि मैं भी अगले जन्म में ऐसा बादशाह बनूँ । निदान के अनुसार उसने एक ताम्रपत्र पर श्लोक लिखवा कर उस ताम्रपत्र को अपने अग्निस्नान के लिए निश्चित स्थान के आसपास गडवा दिया । संस्कृत श्लोक का भाषानुवाद निम्न प्रकार है :-

"तीर्थराज प्रयाग में वि.सं. १५९९ के माघ कृष्णा द्वादशी के प्रथम प्रहर में समस्त पापों का क्षय करने वाला में ब्रह्मचारी मुकुन्द अखण्ड साम्राज्य के लिए शरीर को अग्नि में होम रहा हूँ ।

इस प्रकार के ताम्रपत्र को भूमि में गाडकर मुकुन्द ने एक जीर्ण पीपल के वृक्ष को जलाकर उसमें स्वयं को होम दिया । इस प्रकार मरकर मुकुन्द का जीव हुमायू की बेगम हमीदा की कूख में गर्भ रूप से उत्पन्न हुआ और करीब नौ महीने के बाद वि.सं. १५९९ के कार्तिक कृष्णा छठी तिथि के दिन जन्मा । इसके गत जन्म के शिष्य भी मरकर नरहरि, अबुलफजल, राजा मानसिंह वगैरह हुए।

बाद में अपने पूर्व जन्म का संकेत होने पर अकबर ने अपने विश्वस्त पुरुषों द्वारा ऊपर कहे गये ताम्रपत्र की तलाश करवाई और उसे उसी हालत में पाया । यह पुनर्जन्म का सबल प्रमाण है, हालाँकि वर्तमान में ऐसे अनेक व्यक्ति हैं जिन्हें अपने पूर्वजन्म का ज्ञान हुआ है ।

अकबर साहसी और उदार था । ई.स. १५५६ में चौदह वर्ष की उम्र में पानीपत के मैदान में हेमू को हरा कर यह दिल्ली का बादशाह बना । हुमायूं के राज्यकाल में राजपूत राज्य स्वतंत्र हो गये थे । ई.स. १५६७ में इसने चितौड दुर्ग पर अधिकार कर लिया, यद्यपि इसमें बडा कष्ट पडा । राणा उदयसिंह ने इसी समय उदयपुर बसाया । ई.स. १५७२-७३ में अकबर ने गुजरात पर भी विजय पाई । इस तरह महाराणा प्रताप के सिवाय प्रायः भारत के सभी राजा अकबर की आज्ञा में आ गये थे।

महाराणा प्रताप ने ई.स. १५७६ में हल्दी घाटी के मैदान में अकबर से लोहा लिया और चितौड, अजमेर और मांडलगढ को छोडकर संपूर्ण मेवाड को पुनः प्राप्त कर लिया था।

अकबर अपने शासनकाल में चंपा नामक जैन श्राविका के छह मास के उपवास तप से आकृष्ट होकर आ० श्री हीरविजयसूरि, आ० श्री विजयसेनसूरि, कृपारसकोश के रचयिता महोपाध्याय शान्तिचन्द्र, कादंबरी-टीका के कर्ता महोपाध्याय भानुचन्द्र वगैरह महापुरुषों के परिचय में आया और उनसे काफी प्रभावित हुआ था।

अपने पुत्र जहाँगीर को अपना उत्तराधिकारी बनाकर अकबर का वि.सं. १६६२ में आगरा में निधन हो गया।

महाराणा प्रताप

महाराणा प्रताप का जन्म वि.सं. १५९६ में हुआ था । यह बडा वीर और साहसी था । अपने देश और धर्म की रक्षा के लिए अकबर से खूब लडा । एक समय ऐसा भी आया कि इसे जंगलों में दिन बिताने पडे और बडी कडी

मुसीबतों का सामना करना पडा, फिर भी यह अकबर के सामने झुका नहीं । अन्त में अपने जैन मंत्री भामाशाह की सहायता से पुनः सैन्य इकट्ठा कर हल्दी घाटी के मैदान में मुगलों के छक्के छुडा दिये और अपने देश मेवाड को पुनः स्वतंत्र किया।

महाराणा प्रताप आ० श्री हीरविजयसूरि के प्रति पूज्यभाव रखता था और उनको मेवाड पधारने हेतु उसने वि.सं. १६४३-४४ में विनती पत्र भी लिखा था।

आचार्य श्री विजयसेनसूरि (उनसठवें पट्टधर)

आ० श्री हीरविजयसूरि के पट्ट पर आ० श्री विजयसेनसूरि आये । इनका वि.सं. १६०४ में नाडलाई में जन्म, वि.सं. १६१३ में माता-पिता के साथ दीक्षा, वि.सं. १६२८ में आचार्य पद और वि.सं. १६७१ में खंभात के अकबरपुरा में स्वर्गवास हुआ।

आपने अनेक मन्दिरों की प्रतिष्ठा एवं जीर्णोद्धार करवाया, बीस वर्ष तक २००० साधुओं का नेतृत्त्व किया, और योगशास्त्र के प्रथम श्लोक 'नमो दुर्वार-रागादि' के ७०० अर्थ वाला विवरण तथा मुक्तावली इत्यादि ग्रन्थों की रचना की।

वि. १६४९ में आप अकबर बादशाह के आमंत्रण से लाहौर पधारे । वहाँ सैकडों ब्राह्मणों को बाद में परास्त किया । इससे संतुष्ट होकर बादशाह अकबर ने आपको 'सवाई हीर' की पदवी दी थी । आपने पन्यास श्री भानुचन्द्र को उपाध्याय पद दिया जिसका महोत्सव अबुलफजल ने अपने खर्च से किया था।

तपस्विनी श्राविका चम्पाबाई

शेठ थानमल की माता का नाम चम्पाबाई था। इसके छह मास के उपवास तप से अकबर बादशाह का ध्यान इसकी ओर खिंचा गया। अकबर बादशाह इसी के मुख से आ० श्री हीरविजयसूरि की प्रशंसा सुनकर उनके परिचय में आया था।

मन्त्री भामाशाह

भामाशाह जैन महाराणा प्रताप का मन्त्री और आ० श्री विजयदानसूरि और आ० श्री विजयराजसूरि का भक्त था। राणा प्रताप को इसने आपत्ति के समय में बडी महत्त्वपूर्ण सहायता की थी। इसीसे राजगद्दी पर राणाओं के राज्याभिषेक का तिलक करने का अधिकार भामाशाह और उसके वंशजों को मिला था।

भामाशाह ने केसरीयाजी तीर्थ का जीर्णोद्धार वि.सं. १६४३ में करवाया था। वि.सं. १६४५ से १६५३ तक भारत भर के तीर्थों की यात्रा में इसने ६९ लाख द्रव्य व्यय किया था। इतिहास में महाराणा प्रताप के साथ भामाशाह का नाम भी अमर है।

उपाध्याय सकलचन्द्रजी

आ. श्री विजयदानसूरि के शिष्य उपा० श्री सकलचन्द्रजी विद्वान्, कवि और उच्चकोटि के साधक थे। आप अभिग्रहपूर्वक नित्य कायोत्सर्ग ध्यान की साधना करते थे। कई दिनों से उपाश्रय के आस पास में रहे हुए कुम्भार के गधों के रेंकने की आवाज सुनाई न दे तब तक कायोत्सर्ग में रहने का अभिग्रह चलता था। एक दिन कुम्भार अपने गधों को लेकर गांव बाहर चला गया। आपका कायोत्सर्ग चलता रहा। तीन दिन बाद वह कुम्भार अपने गधों सहित लौटा। तब तक आपने कायोत्सर्ग में 'सत्तरभेदी' पूजा की अद्भुत रचना कर ली। यह पूजा विभिन्न शास्त्रीय राग-रागिणीयों के आलापों से भरपूर है। सामान्य संगीतकार तो इस पूजा को पढाने का साहस भी नहीं कर सकता है। 'एकवीशप्रकारी पूजा,' ध्यानदीपिका, प्रतिष्ठाकल्प आदि भी आपकी ही रचना है जो आ० श्री विजयहीरसूरि के समय में रची गई।

शाही परिवार में विषकन्या का जन्म और शान्ति स्नात्र पूजन का प्रभाव

वि.सं. १६४८-४९में लाहोर में जहांगीर की बेगम ने विषकन्या को जन्म दीया। सभी को भय लगा कि इस कन्या के कारण शाही परिवार पर भयंकर आपति आएगी। अतः उसे मार डालने की विचारणा हुई। यह बात महोपाध्याय श्री भानुचन्द्र ने सुनी। तब सेठ थानमल और शाह मानमल द्वारा लाहोर के जैन उपाश्रय में शान्ति-स्नात्र पूजन विधि करवाई जिसमें बादशाह अकबर, शाहजादा जाहाँगीर आदि उपस्थित हुए। सभी ने सुवर्ण-पात्र में से स्नात्र-जल लेकर अपनी -अपनी आंखो पर लगाया और जनान-खाने में भी भिजवाया। यह विधि समाप्त होने पर सभी को निश्चय हुआ कि आपत्ति दूर हो गई। इस तरह सभी प्रसन्न हुए और कन्या बच गई।

उपाध्याय श्री सिद्धिचन्द्र अर्थात् दृढधर्मिता और उसका प्रभाव

बादशाह अकबर की मृत्यु के बाद जहाँगीरने अहमदाबाद में आ. श्री हीरविजय के परिवार के महोपाध्याय श्री भानुचन्द्र और उनके शिष्य उपाध्याय श्री सिद्धिचन्द्र को आगरा पधारने के लिए आमन्त्रित किया। वि.सं. १६६९ में बादशाह ने इनका बडी धूमधाम से आगरा में प्रवेश करवाया।

कुछ समय बाद उपा. श्री सिद्धिचन्द्र के रूप और यौवन से मोहित किसी शाहजादी ने उनसे शादी करना चाहा । तब जहाँगीर ने भी प्रथम लालच और अन्त में भय दिखाते कहा- मान जाओ, नहीं तो हाथी के पाँव के नीचे रौंदे जाओगे । उपा० श्री सिद्धिचन्द्र बोले- दुनिया का बादशाह बन कर जीने की अपेक्षा जगद्गुरु के दिये इस संयम के पवित्र वेष में मर जाना ज्यादा अच्छा समझता हूँ । बादशाह के क्रोध का पार न रहा और हाथी के पाँव के नीचे कुचलने का आदेश दे दिया । राजमहल के प्राङ्गण में उपा० श्री सिद्धिचन्द्र सागरिक अनशन कर कायोत्सर्ग में खडे रहे । राजावेश से मदोन्मत्त हाथी उनकी तरफ छोडा गया परन्तु आश्चर्य तब हुआ जब हाथी उनके पास जाकर एक विनीत शिष्य की अदा से शान्त खडा रहा ।

यह देखकर बादशाह का आवेश शान्त हुआ और जैन धर्म की जय-जयकार हुई । उपा० श्री सिद्धिचन्द्र उसी शाम को आगरा छोड अन्यत्र चले गये ।

बादशाह को इस प्रसंग से बडा अफसोस हुआ और उसने उपा० श्री सिद्धिचन्द्र को पुनः सन्मानपूर्वक अपने पास बुला लिया ।

कावी तीर्थ में सास-बहू के मन्दिर

शेठ कानजी की पत्नी हीरादे द्वारा निर्मित और वि.सं. १६४९ में प्रतिष्ठित विशाल 'सर्वजितप्रासाद' में प्रवेश करते समय कुंवरजी की पत्नी तेजलदे का सिर द्वार के उत्तरंग के साथ टकरा गया । तब उसने अपनी सास हीरादे से कहा- सासूजी ! आपने मन्दिर तो विशाल बनवाया है किन्तु द्वार छोटा बनवाया है । हीरादे ने अपनी बहू को कटाक्ष में कहा- ऐसी बात है तो तू ऊँचे द्वार वाला मन्दिर बनवाना ।

तेजलदे ने तभी मन ही मन निश्चय कर लिया और अपने पति कुंवरजी को प्रेरित कर नया बावन जिनालय 'रत्न-तिलक' नामक प्रासाद बनवाया जिसकी प्रतिष्ठा वि.सं. १६५४ में हुई ।

कावी तीर्थ के दोनों मन्दिर सास-बहू के मन्दिर कहलाते हैं ।

आचार्य श्री विजयदेवसूरि (साठवें पट्टधर)

आ० श्री विजयसेनसूरि के पट्ट पर आ० श्री विजयदेवसूरि हुए। आपका जन्म ईडर में वि.सं. १६३४ में, दीक्षा वि.सं. १६४३ में, आचार्य पद वि.सं. १६५८ में, गच्छानुज्ञा वि.सं. १६५८ में और स्वर्गवास वि.सं. १७१३ में हुआ।

एक बार बादशाह जहाँगीर ने आपके विरुद्ध बातें सुनकर आपको खंभात से बहुमानपूर्वक मांडवगढ बुलवाया। वहाँ आपकी जीवनचर्या, तप, त्याग और विद्वता से संतुष्ट होकर बादशाह ने आपको वि.सं. १६७३ में 'जहाँगीरी महातपा' और महोपाध्याय की नेमसागर गणि को 'वादि-जिपक' का बिरुद दिया।

वि.सं. १६८१ में आपने विजयसिंहसूरि को आचार्य पद देकर अपना उत्तराधिकारी नियुक्त किया।

वि.सं. १६८२ में आपका चातुर्मास सिरौही में था। सादडी के श्रावकों के आग्रह से वहाँ गीतार्थ साधुओं को भेजकर लुंका के अनुयायियों को निरुत्तर करवाया। वहाँ से उदयपुर जाकर उन्हीं गीतार्थो ने राणा कर्णसिंह की राजसभा में भी लुंपकों को बुलवाकर पराजित किया।

सूरत में सागरगच्छ वालों ने आपको राजसभा में वाद के लिए ललकारा किन्तु वे ही पराजित हुए, तथापि सभी हिल-मिल कर रहें, ऐसी आपकी भावना सदा रही।

अनेक राजा, महाराजा और मेवाड के राणा आपसे प्रभावित थे और आपके उपदेश से अपने-अपने राज्यों में उन्होंने अमारि का प्रवर्तन करवाया था।

कर्णाटक में गोलकुण्डा के निकट भाग्यनगर में बादशाह कुतुबशाह की राजसभा में आपने बाद में तैलिंग ब्राह्मणों को पराजित कर जैनधर्म की बडी प्रभावना की थी।

आपके जीवनकाल में ही वि.सं. १७०८ में आपने पट्टधर पं०श्री सत्यविजय को पट्ट पर प्रतिष्ठित करना चाहा, किन्तु उन्होंने मना कर दिया। आ० श्री विजयसिंहसूरि कालधर्म पा गये। अत: आपने आ० श्री विजयप्रभसूरि को वि.सं. १७१० में पट्ट पर प्रतिष्ठित किया।

देवसूरिगच्छ और आनन्दसूरि गच्छ की उत्पत्ति

आ० श्री विजयदेवसूरि के शासन-काल में उपा० श्री सोमविजय, उपा० श्री कीर्तिविजय आदि सागरविरोधी साधुओं ने सागर-साधुओं के प्रति आचार्य श्री का उदार रुख देखकर वि.सं. १६७३ में आ०श्री विजयसेनसूरि के पट्ट पर आ०श्री विजयतिलकसूरि को आचार्य पद दिलवाकर प्रतिष्ठित किया। आ० श्री विजय-तिलकसूरि ने वि.सं. १६७६ में आ० श्री विजयआनन्दसूरि को आचार्य पद देकर अपना पट्टधर बनाया।

एक बार आ० श्री विजयसेनसूरि और आ० श्री विजयआनन्दसूरि दोनों ने मिलकर निश्चित किया कि हिल-मिल कर चलें। यह संघटन तीन साल चला। बाद में दोनों समुदाय अलग-अलग हो गये जो आगे जाकर देवसूरिगच्छ और आनन्दसूरि गच्छ के नाम से प्रसिद्ध हुए तथापि आचरण दोनों गच्छों का समान रहा।

आ. श्री विजयसिंहसूरि और आ. श्री विजयप्रभसूरि

(इकसठवें पट्टधर)

आचार्य श्री विजयसिंहसूरि

आ० श्री विजयदेवसूरि के पट्टधर आ० श्री विजयसिंहसूरि हुए। इनका जन्म मेदिनीपुर में वि.सं. १६४४ में, दीक्षा वि.सं. १६५४ में माता-पिता और तीन भाइयों के साथ, आचार्य पद और पट्टस्थापना वि.सं. १६८१ में तथा स्वर्गवास वि.सं. १७०८ में हुआ। ये प्रखर बुद्धिशाली, स्थिर, गंभीर और क्षमाशील थे। आप समर्थ प्रवचनकार थे। मेवाड का राजा जगत्सिंह तो आपका श्रावक बन गया था। वह हमेशा भगवान् श्री ऋषभदेव की पूजा करने लगा था। आपके उपदेश से झींझुवाडां (सौराष्ट्र) में मछली पकडना बन्द हुआ था।

आचार्य श्री विजयप्रभसूरि (बासठवें पट्टधर)

आ० श्री विजयप्रभसूरि का जन्म वि.सं. १६३७ में कच्छ के मनोहरपुर में, दीक्षा वि.सं. १६८६ में और नाम श्री वीरविजय, आचार्य पद वि.सं. १७१०, वि.सं. १७१३ में गच्छानुज्ञा और स्वर्गवास वि.सं. १७४९ में हुआ।

वि.सं. १७१५, १७१९ और १७२० में गुजरात आदि में भयंकर दुष्काल था किन्तु सौराष्ट्र में आपकी उपस्थिति के कारण दुष्काल का प्रसार नहीं हुआ ।

पन्यास श्री सत्यविजय गणि (तिरसठवें पट्टधर) क्रियोद्धार और संवेगीशाखा

आ० श्री विजयसिंहसूरि के मुख्य शिष्य पन्यास श्री सत्यविजयगणि हुए । वि.सं. १७०८ में आपके गुरुदेव के स्वर्गवास के बाद आ. श्री देवसूरि ने आपको आचार्य पद देना चाहा किन्तु आपने संतोष भाव से मना कर दिया । जगद्गुरु आचार्य श्री हीरविजयसूरि के शिष्य उपाध्याय श्री कीर्तिविजयगणि (पूर्व पर्याय से) आ० श्री विजयसिंहसूरि के बडे भाई थे । अत: उनके शिष्य उपा. आ०श्री विनयविजयगणि और आपमें गाढ प्रीति थी । आपने उपा० श्री विनयविजय गणि, महोपाध्याय श्री यशोविजय वाचक आदि चारित्रप्रिय १७ साधुओं के सहयोग से क्रियोद्धार किया । संवेगी शाखा आपसे चली । आपके शिष्य पं० कर्पूरविजय गणि और पं० कुशलविजय गणि हुए ।

आचार्य श्री राजसागरसूरि और सागर शाखा

आ०श्री राजसागरसूरि महोपाध्याय श्री धर्मसागर गणि के शिष्य आ०श्री लब्धिसागर के शिष्य उपा. श्री नेमसागर के छोटे भाई तथा शिष्य थे । इनका जन्म वि.सं. १६३७ में सिपोर में हुआ । इनका दीक्षा नाम मुक्तिसागर था । वि.सं.१६७९ में आ०श्री विजयदेवसूरि के वासक्षैप से शेठ शान्तिदास ने ईनको उपाध्याय पद दिलाया । पश्चात् वि.सं. १६८६ में इनको आचार्य पद दिलाकर 'राजसागरसूरि' के नाम से आ०श्री विजयदेवसूरि के पट्ट पर प्रतिष्ठित किया । इनसे सागर शाखा चली ।

आचार्य श्री ज्ञानविमलसूरि श्री ऋद्धिविमल गणि और विमलशाखा

क्रियोद्धारक आ० श्री ज्ञानविमलसूरि का जन्म भीनमाल में वि.सं. १६९४ में हुआ । आ०श्री आनन्दविमलसूरि (५६ वें पट्टधर) के शिष्य पं. श्री हर्षविमल (५७) के शिष्य, पं.श्री जयविमल (६०) के शिष्य पं. धीरविमल गणि (६१) के

पास, इन्होंने वि.सं. १७०२ में दीक्षा ली और नयविमल नाम से प्रसिद्ध हुए। वि.सं. १७४८ में आ०श्री विजयप्रभसूरि (६१) की आज्ञा से आचार्य पद प्राप्त कर ये आ०श्री ज्ञानविमलसूरि (६२) के नाम से प्रसिद्ध हुए। महोपाध्याय श्री यशोविजयजी की प्रेरणा से इन्होंने वि.सं. १७४९ में क्रियोद्धार कर संवेगी मार्ग अपनाया। ये विद्वान् और समर्थ कवि थे। ज्ञानसार और श्री आनन्दघनजी की चौबीसी पर आपने संक्षिप्त विवेचनरूप टब्बों की, अनेक स्तवन, स्तुति, सज्झाय और देववंदन आदि की रचना की। वि.सं. १७८२ में ये स्वर्गवासी हुए। आ०श्री आनन्दविमलसूरि के शिष्य श्री ऋद्धिविमलगणि ने भी वि.सं. १७१० में महोपाध्याय श्री यशोविजय के सहयोग से क्रियोद्धार किया था। इन दोनों से विमल शाखा निकली।

वर्तमान साधु-समूदाय

इस तरह आ० श्री विजयसेनसूरि के बाद साधुसमुदाय पांच शाखाओं में बट गया - (१) देवसूरि गच्छ (२) आनन्दसूरि गच्छ (३) संवेगीशाखा (४) सागरगच्छ और (५) विमलगच्छ।

वर्तमान काल में यह शाखाभेद विद्यमान नहीं है। सिर्फ संवेगी परंपरा विद्यमान है जिसमें (१) विजय, (२) सागर और (३) विमल अन्त वाले नामों के साधु हैं। श्री मोहनलालजी महाराज के साधुओं के नाम 'मुनि' अन्त वाले हैं। श्री हीरमुनि को नाना (जि. पाली-राज.) गांव में कुछ अज्ञान लोगों ने उपसर्ग किया था जिसे उन्होंने क्षमापूर्वक सहा था। वर्तमान में आ.श्री चिदानन्दसूरि आदि है।

न्यायनिष्ठ बादशाह जहाँगीर

हिन्दू बेगम जोधाबाई से उत्पन्न जहाँगीर अकबर बादशाह का ज्येष्ठ पुत्र था। अकबर बादशाह ने अपने अन्त समय ई.स. १६०५ में इसे अपना उत्तराधिकारी बनाया था।

यह भी अपने पिता की तरह विद्वान् और संयमी जैन साधुओं के प्रति सद्भाव रखता था और अपने राज्य में अमारि प्रवर्तन करवाता था। वि.सं. १६६९ में अपने सत्ताईस वर्षीय शाहजादा शाहजहाँ के साथ अहमदाबाद में जगद्गुरु आ.श्री

हीरविजयसूरि के परिवार के उपा. श्री भानुचन्द्र और उपा. श्री सिद्धिचन्द्र को आगरा पधारने के लिए बादशाह ने आमंत्रण दिया था और जब वे आगरा पहुँचे, बादशाह ने बडा स्वागत किया था। इसी समय शाहजहाँ की शादी अहमदाबाद के सूबेदार की लडकी मुमताज से हुई और इसी समय इंग्लेण्ड के राजा जेम्स प्रथम का प्रतिनिधि टॉमसरॉय बादशाह जहाँगीर से अहमदाबाद में मिला और भारत में व्यापार के लिए आज्ञा पाई थी।

वि.सं. १६७३ में मांडवगढ में बादशाह जहाँगीर ने आ०श्री विजयदेवसूरि की जीवन-चर्या से प्रभावित होकर उन्हें 'जहाँगीरी महातपा' और महोपाध्याय श्री नेमसागर को 'वादिजिपक' की पदवी दी थी। महोपाध्याय श्री विवेकहर्ष वगैरह जैन साधुओं से भी वह प्रभावित था।

जहाँगीर की न्यायनिष्ठता

एक बार शिकार करती नूरजहाँ की गोली से कोई धोबी मर गया। धोबिन ने जहाँगीर के दरबार में शिकायत की। तब बादशाह जहाँगीर ने धोबिन के हाथों में बंदूक थमाते कहा- नूरजहाँ ने तेरे पति को मार दिया। तू इसके पति को (मुझे) मार दे। यह था जहाँगीर का न्याय।

बादशाह शाहजहाँ और ताजमहल

बादशाह जहाँगीर का तीसरा पुत्र शाहजहाँ ई.स. १५९० में जन्मा। यह महोपाध्याय श्री भानुचन्द्र से कुछ पढा था, उपा. श्री सिद्धिचन्द्र को अपना मित्र मानता था और महोपाध्याय श्री विवेकहर्ष गणि के परिचय में आया था। अतः यह जैन साधुओं से प्रभावित था।

शाहजहाँ ने ई.सं. १६२८ से १६५८ तीस वर्ष तक राज्य किया और राज्यकाल में अपनी मुमताजबेगम की यादगार में ताजमहल बनवाया, जिसमें हजारों आदमियों ने कई वर्षो तक काम किया। इसे बने कोई ३५० वर्ष हुए है किन्तु देखने वाले को लगता है जैसे आज ही बना हो। दुनिया भरके लोग इसे देखने आते हैं। वर्तमान जगत् का यह एक आश्चर्य है।

धर्मांध बादशाह औरंगजेब

औरंगजेब का जन्म मुमताज बेगम से ई.स. १६१८ में राजस्थान में हुआ था। यह बडा धर्मान्ध था। ई.स. १६४४-४५ में जब यह गुजरात का सूबेदार था, अहमदाबाद में सरसपुर के जैन मन्दिर को तोडकर मस्जिद में बदलाव दिया था और उसमें फकीरों को बसा दिया था। किन्तु नगरशेठ शान्तिदास ने अपने प्रभाव से शाहजहाँ द्वारा राज्य के खर्च से उसी जगह पुनः मन्दिर बनवाकर भगवान् चिन्तामणि पार्श्वनाथ की प्रतिष्ठा करवाई थी।

ई.स. १६५८ में अपने पिता शाहजहाँ को कैद कर और भाइयों को मरवाकर यह राजगद्दी पर आया और ई.स. १७०७ तक इसने राज्य किया। इसने हिन्दुओं और जैनों के अनेक मन्दिरों को नष्ट किया।

पं. श्री प्रतापकुशल गणि

आ०श्री हेमविमलसूरि की परंपरा के पं. श्री प्रतापकुशल गणि विद्वान् और फारसी भाषा के अभ्यासी थी। उनसे अनेक राजा महाराजा प्रभावित थे। यह बात जब औरंगजेब ने सुनी तब उसने आपको बडे सन्मान से अपने पास बुलवाया और अपने मन की शंकाओं का समाधान पाया। बादशाह इनसे प्रभावित हो कर कोई पांच-सात गाँवों की जागीरी देने लगा किन्तु इन्होंने निर्लोभता से इन्कार कर दिया।

दयालशाह का किला (मेवाड का भव्य जैन तीर्थ)

इसी समय मेवाड के राणा राजसिंह का महामन्त्री दयालशाह राजसागर की पहाडी पर भगवान् श्री ऋषभदेव का नौ मञ्जिल का भव्य जैन मन्दिर बनवा रहा था औरंगजेब इसे किला समझ कर वि.सं. १७२८ के आसपास चढ आया। दयाल-शाह ने बडी बहादुरी से बादशाह का सामना किया। उल्लेखनीय हकीकत है कि दयालशाह की पत्नी पाटमदेवी, जो उदयपुर के नगरशेठ की पुत्री थी, युद्ध के मैदान में एक सैनिक के वेश में अपने पति की सहायता में रही। मन्त्री की वीरता से प्रभावित होकर एवं यह किला नहीं किन्तु मन्दिर है, जानकर बादशाह वापिस लौट गया। वि.सं. १७३२ में दयालशाह ने विजयगच्छ के आ०श्री विनय-

सागरसूरि से मन्दिर की प्रतिष्ठा करवाई। आज भी यहाँ हजारों की संख्या में यात्री आते है।

हिन्दूसम्राट् छत्रपति शिवाजी

इसी समय छत्रपति शिवाजी स्वतंत्र हिन्दूसम्राट् हुए जिन्होंने औरंगजेब से लोहा लिया।

अहमदाबाद के नगरशेठ शान्तिदास और उनका परिवार

अहमदाबाद में शेठ शान्तिदास की आवभगत से प्रभावित होकर अकबर बादशाह की किसी बेगम ने उसे धर्म का भाई बनाया था। इसलिए जहाँगीर शेठ को अपना मामा मानता था। वि.सं. १६६३ में जहाँगीर बादशाह बना तब शेठ शान्तिदास को गुजरात का सूबेदार बनाना चाहा किन्तु शेठ ने मना कर दिया था। अतः गुजरात के सभी सूबेदार शेठ के प्रति बहुमान रखते थे।

शेठ तीव्र बुद्धिशाली थे और गुरुकृपा से काफी सम्पन्न थे। बादशाह शाहजादे और सूबेदार आवश्यकतानुरार शेठ से धन उधार लेते थे। शेठ ने भी बादशाह अकबर की सभा में जवाहिर की परीक्षा कर नाम कमाया था।

शेठ ने औरंगजेब द्वारा तोडे गये अहमदाबाद के सरसपुर के जैन मन्दिर को पुनः शाहजहाँ से फरमान पाकर राज्य-खर्च से बनवाया था।

शाहजहा मुरादबक्स ने अपनी सूबेदारी के समय शेठ को श्री शत्रुंजय तीर्थ का पहाड भेंट दिया था। वि.सं. १७१५ में शेठ का स्वर्गवास हुआ।

शेठ शान्तिदास के पौत्र शेठ खुशालचन्द ने मराठा सैनिकों के आक्रमण से अहमदाबाद की प्रजा की रक्षा की थी, अतः सरकार ने शेठ परिवार को आयात माल पर चार आना=०=२५ पै. सैकडा हक बांध दिया था।

भारत पर ईस्ट-इण्डिया कंपनी का आधिपत्य

विक्रम की अठारहवीं सदी के उत्तरार्ध में मुगल साम्राज्य के पतन के साथ पुर्तगाली, फ्रांसीसी और युरोपियन व्यापार के बहाने भारत आये। अन्त में

युरोपियन 'ईस्ट इन्डिया कंपनी' के नाम से डटे रहे और उन्होंने अपना आधिपत्य जमाया। ई.सं. १७६६ में कंपनी सरकार ने दिल्ली के बादशाह, बंगाल के नवाब और जगत्‌शेठ को वार्षिक भत्ता देना आरम्भ किया।

शेठ खुशालचन्द का पुत्र शेठ बखतचन्द था। वि.सं. १८३६ में कंपनी सरकार के अधिकारी सर गार्डन ने पेशवा के सूबेदार को भगा दिया और अहमदाबाद को लूटना चाहा। तब शेठ बखतचंद, काजी सेख मुहंम्मद और दीवान मिर्जा ने सर गार्डन को समझा कर लूट बंद करवाई थी। शेठ बखतचंद का स्वर्गवास वि.सं. १८७० में हुआ। शेठ दलपतभाई, कस्तूरभाई और वर्तमान में शेठ बिमलभाई तथा श्रेणिकभाई वगैरह शेठ बखतचंद की परम्परा में है जिन्होंने शासनसेवा के और लोकोपयोगी अनेक कार्य किये हैं।

शेठ बखतचंद के सात पुत्रों में एक शेठ हेमाभाई हुए जिन्होंने शत्रुंजय तीर्थ को काफी समृद्ध बनाया। अपने नाम की और अपनी बहिन उजमबाई के नाम की टोंकें बनवाई। शेठ हेमाभाई वि.सं. १९१४ में स्वर्गवासी हुए। तपागच्छाधिपति पं० श्री मुक्तिविजयजी गणि अपरनाम मूलचंदजी महाराज के उपदेश से वि.सं. १९२९ में उजमबाई ने अपना विशाल मकान धर्मशाला के तौर पर दे दिया जो आज भी अहमदाबाद में उजमबाई की धर्मशाला के नाम से प्रसिद्ध है।

शेठ हेमाभाई का पुत्र शेठ प्रेमाभाई था। शेठ प्रेमाभाई ने 'आनंदजी कल्याण-जी' की पेढी की स्थापना की जो शत्रुंजय-महातीर्थ वगैरह अनेक तीर्थो का सफल प्रबंध कर रही है। यह शेठ पं० श्री मुक्तिविजयजी गणि (मूलचंदजी - महाराज) का अनन्य भक्त था। इसने अनेक मन्दिर और धर्मशालाएँ बनवाई। नगरशेठ प्रेमाभाई हॉल, गुजरात कॉलेज, सिविल अस्पताल वगैरह अनेक लोकोप-योगी कार्य भी किये। शेठ प्रेमाभाई वि.सं. १९४३ में स्वर्गवासी हुए।

शेठ प्रेमाभाई के तीसरे पुत्र का नाम शेठ मणिलाल था। इसने वि.सं. १९५६ के भयंकर दुष्काल में गरीबों को अनाज और पशुओं को घास-चारे की मदद कर बचाया था।

शेठ लालभाई के पुत्र शेठ चमनभाई ने अहमदाबाद में कसाईखाने के विरुद्ध बडी हडताल का आयोजन कर उसे बन्द रखाया था। शेठ चमनभाई का स्वर्गवास वि.सं. १९६८ में हुआ।

शेठ मणिभाई के पुत्र शेठ कस्तूरभाई ने वि.सं. १९९० में मुनिसम्मेलन का सफल संचालन करवाया था। यह वि.सं. २००४ में स्वर्गवास हुए।

कवि श्री ऋषभदास

खंभात निवासी ऋषभदास प्रारंभकाल में उपाश्रय में सफाई का कार्य करता था। सुना जाता है कि एक बार उपाश्रय में कोई गुणवान् साधु महात्मा रहे हुए थे। उनके गुणों से आकृष्ट किसी देवता ने उपाश्रय के आले में एक प्रभावशाली लड्डू रख दिया जिसे खाने वाला शीघ्रकवि बन जाए। सफाई करते-करते वह लड्डू ऋषभदास की नजर में आया और उसे वह खा गया। कवित्वशक्ति उसमें प्रकट हो गई। अनेक स्तुति, स्तवन, सज्झाय और रास कवि ऋषभदास ने रचे हैं जिनमें 'भरत-बाहुबलिरास' और 'हीरविजयसूरि रास' मुख्य हैं। यह आचार्य श्री विजयसेनसूरि, आ. श्री विजयदेवसूरि और आ. श्री विजयसिंहसूरि का परम भक्त था।

महोपाध्याय श्री समयसुन्दर गणि (खरतरगच्छीय)

खरतरगच्छ के ५६ वें पट्टधर आ० श्री जिनचन्द्रसूरि के शिष्य (५७) महोपाध्याय श्री सकलचन्द्र के शिष्य (५८) महोपाध्याय श्री समयसुन्दर का जन्म वि.सं. १६१० या १६२० में साचौर में, दीक्षा वि.सं. १६२८ में और स्वर्गवास १७०३ में हुआ था। ये बडे विद्वान् और कवि थे।

वि.सं. १६४९ में काश्मीर में अकबर बादशाह की राजसभा में 'राजानो ददते सौख्यम्' एक चरण के आठ लाख अर्थ वाले रत्नावली' ग्रन्थ की रचना की थी। सारस्वत टीका, लिंगानुशासन की अवचूरि, रघुवंश टीका, कल्पसूत्र-टीका, दशवैकालिक टीका, विशेषशतक, विचारशतक, गाथासहस्त्री, कथाकोश, अनेक चरित ग्रन्थ, भक्तामर स्तोत्र एवं कल्याणमन्दिर स्तोत्र की टीकाएँ इत्यादि संस्कृत एवं गुजराती भाषा में स्तवन, सज्झाय, रास आदि इनकी लोकप्रिय रचनाएँ हैं।

योगिराज श्री आनन्दधन

योगिराज का मूल नाम मुनि श्री लाभविजय था। ये विद्वान्, निस्पृह और उच्च कोटि के साधक थे। ये सहज आनन्द में रहते थे और इनकी सभी कृतियां

'आनन्दधन' पद से अंकित हैं । ये महोपाध्याय श्री यशोविजय के समकालीन थे । इन दोनों के बीच का प्रीति ज्ञानयोग और भक्तियोग के संगम की प्रतीक थी ।

एक बार आप अहमदाबाद के किसी उपाश्रय में बिराजमान थे । प्रवचन का समय नियत था । उपाश्रय का अगुआ श्रावक कुछ विलंब से पहुँचा और उसने देखा कि प्रवचन प्रारंभ हो गया है । तब वह योगिराज को उलाहना देने लगा । योगिराज शान्त और स्थिर भाव से 'रोटी तो आनन्दधन खा गया और ये कपडे हैं सो ले ले' कहते हुए शहर छोड चल दिये ।

बाद में ये आबू पर्वत पर और मारवाड में विचरे । मेडता के राणा की रानी नि:संतान होने से अपमानित थी । एक बार योगिराज के पास पहुँची और अपनी दर्दभरी स्थिति बताकर पुत्र की कामना की । योगिराज निस्पृह भाव से बोले- रानी को पुत्र हो तो आनन्दधन को क्या ? और न हो तो भी आनन्दधन को क्या ? रानी ने योगिराज के इन शब्दों को मानो पुत्र प्राप्ति का मन्त्र ही हो, ऐसा समझकर तावीज में मढाकर बाँध दिया । उचित समय में रानी ने पुत्र को जन्म दिया । राणा ने जब इस तावीज की बात सुनी तो उसके आश्चर्य का पार न रहा और वह योगिराज की निस्पृहता से उनका अनन्य भक्त बन गया ।

एक बार चौहट्ट में नर्तकी नृत्य के साथ गा रही थी । उसी समय योगिराज बाहरभूमि से लौट रहे थे । दर्शकों की भीड से प्राय: रास्ते बन्द हो गये थे । अत: योगिराज एक तरफ खडे रह गये । सामान्य लोगों ने तो यही समझा कि योगिराज भी नर्तकी का नाच देखने आये हैं । प्रसंग की पूर्णाहुति के बाद लोगों में खूब चर्चा हुई, किन्तु योगिराज से समाधान पाने का कोई साहस न कर सका ।

दूसरे दिन योगिराज ने प्रवचन-सभा में इसी प्रसंग को छेडते हुए श्रोताओं से पूछा- कल क्या देखा ? क्या सुना ? सभी श्रोता चुप थे । योगिराज मौन भंग करते हुए बोले- सुनो, कल वाद्य नृत्य और गायन हो रहा था । उसमें नगाडा जोर शोर से कह रहा था... नरक...नरक...नरक... । तब वीणा...कुण... कुण...कुण... आवाज कर मानो पूछ रही थी कि कौन-कौन नरक में जायेगा ? नर्तकी इस प्रश्न के समाधान में दर्शकों की तर्फ हाथ लम्बा कर...आ...आ... आ... आलापती मानो कह रही थी कि ये दर्शक (नरक जाएँगे) सभा, योगिराज

के अद्‌भुत तत्त्व-चिन्तन से अवाक् रह गई । यह था योगिराज का नर्तकी-दर्शन ।

'आनन्दधन-चौबीसी', योगिराज की विशिष्ट कृति है जो क्रमिक साधनामार्ग का दर्शन कराती है और अत्यन्त लोकप्रिय है । इसके अतिरिक्त सौ से ज्यादा वैराग्य के पद आपके रचे हुए हैं ।

महोपाध्याय श्री विनयविजय वाचक

आ० श्री सिंहसूरि के ज्येष्ठ भ्राता उपाध्याय श्रीकीर्तिविजय गणि के शिष्य उपाध्याय श्री विनयविजय हुए । ये बडे विद्वान् और सौभाग्यशाली थे । इन्होंने काशी में महोपाध्याय श्री यशोविजय के साथ अध्ययन किया था । आपके अधूरे रहे 'श्रीपाल-रास' को उपाध्याय श्री यशोविजय ने पूर्ण किया ।

लोकप्रकाश, कल्पसूत्र की सुबोधिका टीका, शान्त-सुधारस, लघुसिद्धहेम-प्रक्रिया आदि आपकी विशिष्ट संस्कृत रचनाएँ हैं । इसके अतिरिक्त गुजराती रचनाओं में 'पुण्य-प्रकाश स्तवन, सज्झाय और रास' इत्यादि लोकप्रिय हैं ।

न्यायाचार्य महोपाध्याय श्रीमद् यशोविजय वाचक

जगद्‌गुरु आ० श्री हीरविजयसूरि के शिष्य उपा. श्री कल्याणविजय के शिष्य और समर्थ विद्वान् उपा. श्री लाभविजय के शिष्य श्री नयविजय के शिष्य महो-पाध्याय श्री यशोविजय हुए । इनका जन्म पाटन के पास कन्होडा गाँव में हुआ था । बाल्यकाल से ही ये तीव्र मेघावी थे । अपनी माता के साथ उपाश्रय में गुरु भगवंत के श्रीमुख से भक्तामर-स्तोत्र सुनने मात्र से इनको याद हो गया था । दीक्षा बाल्यकाल में ही वि.सं. १६८८ में अपने छोटे भाई के साथ हुई जिनका नाम मुनि श्री पद्मविजय रखा गया था । उपाध्याय पद वि.सं. १७१८ में आ० श्री विजयप्रभसूरि के हाथों से और स्वर्गवास वि.सं. १७४४ में डभोई (गुजरात) में हुआ ।

वि.सं. १६९९ में श्रीसंघ के समक्ष आपने अष्टावधान किये । इसके बाद आपने गुरु भगवंत की शीतल छाया में काशी में ब्राह्मण पण्डित के पास अध्ययन किया । वहाँ अध्ययनकाल में बाहर से आये वादी सन्यासी को आपने पराजित किया तब वहाँ के पण्डितों ने आपको 'न्यायविशारद' का बिरुद दिया ।

पश्चात् आप आगरा गये। वहाँ चार वर्ष तक अध्ययन कर आप स्व-पर शास्त्रों में पारंगत बने। आगरा में आपने दिगंबर पण्डित बनारसीदास को पराजित किया। काशी में गंगा नदी के किनारे सरस्वती देवी से आपने कवि और विद्वान् बनने का वरदान पाया था। इस तरह आप अनेक वादों में विजय पाकर एवं विद्वता से समृद्ध बन कर गुजरात की राजधानी अहमदाबाद में बडे आडम्बर से प्रवेश कर रहे थे तब वहाँ के सूबेदार मुहब्बताखाँ का ध्यान खींचा गया और उसने आपको अपनी राजसभा में आमंत्रित किया। वहाँ आपने अठारह अवधान कर बताये। सुबेदार खूब प्रभावित हुआ और आपको पूरे सन्मान से उपाश्रय पहुँचाया।

आप तार्किकशिरोमणि हुए। सिर्फ न्याय के सौ से अधिक ग्रन्थों की आपने रचना की जिनका प्रमाण दो लाख श्लोक प्रमाण था। इस प्रकार की रचना से काशी के पण्डितों ने आपको 'न्यायाचार्य' का बिरुद दिया था। सिर्फ 'रहस्य' पद से अंकित १०८ ग्रन्थों की रचना की इच्छा से आपने अनेक ग्रन्थ रचे जिनमें से 'नयरहस्य' 'स्याद्वादरहस्य' 'भाषारहस्य' इत्यादि ग्रन्थ आज भी प्राप्त हैं। प्राकृत, संस्कृत, हिन्दी और गुजराती भाषा में आपके रचे हुए करीब सौ ग्रन्थ आज भी उपलब्ध हैं। आपने अपने ग्रन्थों में एकान्त दर्शनों का निराकरण कर, अनेकान्त-दर्शन का युक्तिपूर्वक मण्डन किया है।

आपके ऐसे अनेक ग्रन्थों में 'स्याद्वादरहस्य' 'स्याद्वादकल्पलता' इत्यादि संस्कृत भाषा के और 'द्रव्य-गुण पर्यायनो रास' गुजराती भाषा का ग्रन्थ मुख्य है। आपका 'ज्ञानसार' ग्रन्थ तो जैनी गीता ही है।

आप अपने समय के दिग्गज विद्वान् और वादी थे। खंभात में अनौष्ठ्य वाद में ब्राह्मणों को आपने एक क्षण में हरा दिया था। आपकी अतुल विद्वत्ता वर्तमान काल में पूर्व के श्रुतकेवलियों की स्मृति कराती है।

विद्वत्ता के साथ साथ आप उत्तम संयमी भी थे। आपकी प्रेरणा से वि.सं. १७१० में श्री ऋद्धिविमलगणि ने और वि.सं. १७४९ में आ. श्री ज्ञानविमलसूरि ने क्रियोद्धार किया था।

आचार्य श्री विजयरत्नसूरि (देवसूरिगच्छ के ६३ वें पट्टधर)

आ० श्री विजयप्रभसूरि के पट्टधर आ० श्री विजयरत्नसूरि हुए। इनका जन्म वि.सं. १७११, दीक्षा वि.सं. १७१७ में माता और दो भाइयों की साथ और आचार्यपद वि.सं. १७३२ में हुआ।

आपने वागड के राव खुमाणसिंह की राजसभा में वाद में विजय पाई थी। वि.सं. १७६४ में मेवाड के राणा अमरसिंह ने आपके उपदेश से पर्युषण पर्व में सदा के लिए अमारि पवर्तन का फरमान जाहिर किया था। जोधपुर नरेश अजित सिंह और मेडता का राणा संग्रामसिंह भी आपके उपदेश से प्रभावित थे। इसी प्रकार अनेक शांहों और सूबेदारों पर भी आपका प्रभाव था। वि.सं. १७७३ में आप स्वर्गवासी हुए।

आचार्य श्री विजयक्षमासूरि (देवसूरिगच्छ के ६४ वें पट्टधर)

आ० श्री विजयरत्नसूरि के पट्ट पर आ० श्री विजयक्षमासूरि आये। इनका जन्म वि.सं. १७३२, दीक्षा वि.सं. १७३९, वि.सं. १७७३ में आचार्यपद और स्वर्गवास वि.सं. १७८४ में हुआ। आपने कल्पसूत्र की सुबोधिका टीका का गुजराती भाषान्तर किया जो 'खेमशाही' के नाम से प्रसिद्ध है।

आचार्य श्री विजयमानसूरि
(आनन्दसूरिगच्छ के तिरसठवें पट्टधर)

आ० श्री विजयराजसूरि के पट्टधर आ० श्री विजयमानसूरि का जन्म वि.सं. १७०७, दीक्षा वि.सं. १७१९ बडे भाई के साथ, वि.सं. १७३१ में उपाध्यायपद, आचार्यपद वि.सं. १७३६ और स्वर्गवास वि.सं. १७७० में हुआ।

आपने 'धर्मसंग्रह' ग्रन्थ की रचना की जिसका संशोधन महोपा० श्री यशोविजय वाचक ने किया।

आपके पट्टधर आ० श्री विजयऋद्धिसूरि के दूसरे पट्टधर आ० श्री विजयप्रताप सूरि के पट्टधर आ० श्री विजयोदयसूरि के शिष्य पं० रामविजय ने पूना के माधवराव पेशवा की राजसभा में स्थानकवासियों को हराकर जिनप्रतिमा की स्थापना की थी। यह प्रसंग उन्नीसवीं सदी के पूर्वार्ध का है।

पं. श्री देवचन्द्रजी (खरतरगच्छीय)

खरतरगच्छीय के उपाध्याय श्री राजसागर के शिष्य पं० श्री दीपचंद के शिष्य पं. श्री देवचन्द्रजी हुए । ये विद्वान् और उच्चश्रेणी के साधक थे । महोपाध्याय श्री यशोविजय के 'ज्ञानसार' पर ज्ञानमञ्जरी नाम की टीका, चोबीसों भगवन्तों के स्तवन, नवपद पूजा और अन्य तात्त्विक साहित्य आपकी रचनाएँ हैं । सुना जाता है कि वर्तमान में आपकी आत्मा महाविदेह में केवलि-पर्याय में विचर रही है ।

पं. श्री कर्पूरविजय गणि, पं. क्षमाविजय गणि और पं. श्री जिनविजय गणि (संवेगीशाखा के ६३-६४ और ६५ वें पट्टधर)

क्रियोद्धारक पं. सत्यविजय गणि के पट्टधर पं. कर्पूरविजय गणि हुए जिनका स्वर्गवास १७७५ में हुआ । पं. कर्पूरविजय गणि के शिष्य पं. क्षमाविजय गणि हुए । इन्होंने अपने बडे भाई के साथ दीक्षा ली थी जिनका नाम श्री बुद्धिविजय था । पं. श्री क्षमाविजय गणि का स्वर्गवास वि.सं. १७८७ में हुआ । आपके शिष्य पं. श्री जिनविजय गणि और पं. श्री जसविजय गणि हुए ।

पं. श्री जिनविजय का स्वर्गवास वि.सं. १७९९ में हुआ । ये तीनों निर्मल चारित्री, विद्वान् और कवि थे ।

दिल्ली में नादिरशाह द्वारा कत्ले आम

इसी समय ई.सं. १७३९ में दिल्ली के बादशाह मुहम्मदशाह के राज्यकाल में नादिरशाह ने दिल्ली पर आक्रमण किया और कत्ले-आम चलाया । बहुमूल्य कोहीनूर हीरा और मयूरासन भी वह अपने साथ ले गया ।

ग्रन्थ और उनके रचयिता

इस समय तक अन्य आचार्य, उपाध्याय, गणि आदि भी हुए जिनका वर्णन ग्रन्थविस्तार के भय से नहीं कर सकते हैं । फिर भी प्राप्त ग्रन्थों के अनुसार उनके कर्ताओं का नाम और समय का निर्देश निम्न प्रकार है :-

जैन ग्रन्थों और उनके रचयिता का विवरण

समय	कर्ता	ग्रन्थ
वि.सं. ११६०	आ० श्री देवचन्द्रसूरि पूर्ण-तल्लगच्छीय	'संतिनाहचरियं'
वि.सं. ११०३	आ० श्री महेश्वरसूरि	'नागपंचमीकहा' और 'पुष्पवतीकथा'
वि.सं. ११२३	आ० श्री चन्द्रसूरि नागेन्द्र-गच्छीय	'पाक्षिक-सूत्र वृत्ति'
वि.सं. ११९३	आ० श्री चन्द्रसूरि	'मुणिसुव्वयचरियं' और 'संगहणीसुत्त'
१३वीं सदी उत्तरार्ध	आ० श्री रामभद्रसूरि	'कालिकाचार्य-कथा'
१३वीं सदी उत्तरार्ध	आ० श्री प्रद्युम्नसूरि	'वाद-स्थल' (खरतरगच्छीय) (प्रबोध्यवादस्थली' के सामने)
१३वीं सदी उत्तरार्ध	आ० श्री नरचन्द्रसूरि	'कथारत्नसागर' और ज्योतिःसार (नारचन्द)
वि.सं. १३२२	आ० श्री मुनिदेवसूरि	'शान्तिनाथचरित'
१४वीं सदी का पूर्वार्ध	आ० श्री आम्रदेवसूरि पल्लीवाल गच्छीय	'कथाकोश' वगैरह
वि.सं. १३५० के आसपास	गणि श्री नयप्रभ	'गुरुतत्त्वप्रदीप' अपरनाम उत्सूत्रकन्दकुदाल'
वि.सं. १३५० के आसपास	आ० श्री व्रज्जसेनसूरि	'लघुत्रिषष्टिशलाकापुरुष' और 'गुरुगुणषट्त्रिंशक'

जैन ग्रन्थों और उनके रचयिता का विवरण (चालु)

समय	कर्ता	ग्रन्थ
वि.सं. १३८५ से १४१८	आ० श्री राजशेखरसूरि	'न्यायकदली' की पंजिका और टीका, 'प्राकृत-द्वयाश्रय' की वृत्ति, 'विनोदात्मक चतुरशीति कथाकोश' 'स्याद्वादकलिका' 'दानषट्त्रिंशिका' 'षड्-दर्शनसमुच्चय' और प्रबन्धकोश'।
वि.सं. १४१०	आ० श्री मुनिभद्रसूरि, जिनसे फिरोज तुगलक प्रभावित था।	'शान्तिनाथ महाकाव्य'
वि.सं. १४०० के आसपास	आ० श्री चन्द्रशेखरसूरि जी बडे प्रभावशाली हुए हैं।	'उषितभोजनकथा' और 'यव राजर्षिकथा'
,,	आ० श्री जयानन्दसूरि	'स्थूलभद्रचरित'
वि.सं. १४९०	आ० श्री रामचन्द्रसूरि	'विक्रमचरित' और 'पंचदण्डातपत्र छत्रप्रबन्ध-कथा'
वि.सं. १५०५	पं. जिनसूरगणि	'गौतमपृच्छा-बालाव-बोध', 'प्रियंकरनृपकथा' और 'रूपसेनचरित'
वि.सं. १५१४	पं. श्री सत्यराज गणि	'श्रीपालचरित'
वि.सं. १५२०	श्री ज्ञानकीर्ति गणि	'उत्तरज्झयनकथा' (संस्कृत)
वि.सं. १५३५	आ० श्री भावचन्द्रसूरि	'गद्य शान्तिनाथचरित'
वि.सं. १५३६	आ० शुभलाभ गणि	'उपदेशमाला अवचूरि'

जैन ग्रन्थों और उनके रचयिता का विवरण (चालु)

समय	कर्ता	ग्रन्थ
वि.सं. १५५४-५५ और ५७	आ० श्री इन्द्रसिंहसूरि	'भुवनभानु चरित्र' 'मन्हजिणाणं की टीका 'उपदेशकल्पवल्ली' और 'बलिनरेन्द्रकथा'
वि.सं. १५७६-७८	आ० श्री सौभाग्यनन्दिसूरि	'मौन एकादशी कथा' और 'विमलनाथ-चरित'
वि.सं. १६१९-३६ एवं १६६४	आ० श्री शीलदेवसूरि	सटीक 'यतीजीतकल्प' और 'श्राद्धजीतकल्प' 'श्री वृन्दारुवृत्ति' एवं 'विनयंधर चरित'
वि.सं. १६३९ से १६८७	पं. श्री हेमविजय गणि	पार्श्वनाथ चरित्र महाकाव्य 'कथारत्नाकर' 'विजयप्रशस्ति महाकाव्य' आदि
वि.सं. १६८०-८८	उपा. श्री गुणविजय गणि	'विजयप्रशस्तिमहाकाव्य के अन्तिम पांच सर्ग' एवं महाकाव्य की टीका 'विजयदीपिका, 'सकलार्हत्-स्तोत्र टीका आदि
वि.सं. १६६८	पं. श्री गुणविजय गणि	'गद्य श्री नेमिनाथ चरित'
वि.सं. १६७४	पं. श्री संघविजय गणि	'कल्पप्रदीपिका'
वि.सं. १६९३	महोपाध्याय श्री गुणविजय	कल्पसूत्र की 'कल्पलता' लघुटीका
१७वीं सदी के उत्तरार्ध में	पं. श्री देवविमलगणि	'हीरसौभाग्य-काव्य स्वोपज्ञवृत्ति'
वि.सं. १७५० करीब	पं. श्री भोजसागर	'द्रव्यानुयोगतर्कणा'
वि.सं. १७९३	आ.श्री भावप्रभसूरि पूर्णिमागच्छीय	'प्रतिमा-शतक की टीका'

कविराज पं. श्रीवीरविजय गणि

पं. श्री जशविजय गणि के शिष्य प. श्री शुभविजय गणि हुए। इनके शिष्य पं. श्री वीरविजय गणि हुए। ये जन्म से ब्राह्मण थे। जैनी दीक्षा लेने के बाद गुरुकृपा से ये बडे विद्वान्, वादी और कवि हुए। पैंतालीस आगम इन्हें आत्मसात् थे।

एक बार अहमदाबाद के सूबेदार का ब्राह्मण मन्त्री राजसभा में जैनों का उपहास करते बोला- जैनी एक आलू में अनेक जीव मानते हैं।

नगरशेठ की प्रार्थना से आपने राजसभा में सिंहगर्जना करते कहा- हम एक आलू में अनेक जीव मानते हैं और प्रत्यक्ष सिद्ध करके भी बता सकते हैं, किन्तु ब्राह्मण जो गाय की पूँछ में तेतीस करोड देवताओं का वास मानते हैं, वे सिद्ध कर बता दें।

सूबेदार ने आपको और अपने ब्राह्मण मन्त्री को अपनी अपनी बात अमुक मुदत में प्रत्यक्ष सिद्ध कर दिखाने को कहा। तब राज सभा में ही श्रावकों द्वारा मिट्टी के अलग अलग कुण्डों में एक ही आलू के विशिष्ट अंश बोये गये। सभी अंश उग निकले और जैनों का सिद्धान्त सत्य साबित हुआ।

ब्राह्मण मन्त्री बेचारा गाय की पूँछ में तेतीस करोड तो क्या, एक भी देवता बता न सका। अतः वह बडा लज्जित हुआ और आपका जय-जयकार हुआ।

अहमदाबाद में ईस्ट इंडिया कंपनी का शासन स्थापित हो चूका था। वि.सं. १८७८ में स्थानकवासियों के कुछ साधु, आपको अहमदाबाद से बाहर जानकर वाद करने के लिए वहाँ आये। न्यायालय में वाद चला। आपने स्थानकवासियों को पराजित कर जिन-प्रतिमा को सिद्ध की। आपका जय-जयकार हुआ और स्थानकवासी साधु परस्पर एक दूसरे को कोसते हुए तितर बितर हो गये।

आपकी वि.सं. १८५८ से वि.सं. १८८९ तक रची गई पूजाएँ, सिद्धान्त के रहस्यों से भरी हुई और भाववाही हैं। इसी तरह आपके स्तवन, स्तुति, सज्झाय और रास भी लोकप्रिय है।

पं. श्री उत्तमविजय गणि (संवेगीशाखा के ६६ वें पट्टधर)

पं. श्रीजिनविजय गणि के शिष्य प. श्रीउत्तमविजय गणि हुए। आपने वि.सं. १८१३ में अष्टप्रकारी पूजा, चैत्यवंदन, स्तवन, सज्झाय इत्यादि की रचना की। इसी समय अहमशाह अब्दाली आया, जिसने दो लाख मराठा सैनिककत्ल किये। आपके समय में वि.सं. १८१८ में स्थानकवासी रगुनाथजी के शिष्य भीखमजी ने बगडी से 'तेरह पंथ' चलाया। वि.सं. १८२७ में आप स्वर्गवासी हुए।

पं. श्री पद्मविजय गणि

पं. श्री उत्तमविजय गणि के शिष्य पं. श्री पद्मविजय गणि हुए। आपने वि.सं. १८३८ में नवपदपूजा और वि.सं. १८५१ मे नवाणुं प्रकार की पूजा रची। चैत्यवंदन, स्तवन, स्तुति और सज्झाएँ भी आपने रचीं। वि.सं. १८६२ में आपका स्वर्गवास हुआ।

उपाध्याय श्री उदयरत्न गणि

आ० श्री विजयदानसूरि (५७) के दूसरे पट्टधर आ. श्री विजयराजसूरि (५८) से तपागच्छ रत्नशाखा निकली। उसमें ६५ वें उपा. श्री उदयरत्न गणि इसी समय हुए। ये समर्थ कवि थे।

एक बार आप शंखेश्वरजी तीर्थ में चतुर्विध संघ लेकर पधारे थे। वहाँ के ठाकुर ने मन्दिर के दरवाजे बन्द करवा दिये और संघ से प्रभु-दर्शन की लागा मांगने लगा। तब साधु श्री के मन्दिर के द्वार पर खडे होकर 'पास शंखेश्वरा सार कर सेवका, देव ! कां एवडी वार लागे ? कोडी कर जोडी दरबार आगे खडा, ठाकुरा चाकुरा मान मागे।' छन्द ललकारते ही अपने आप ताले टूट गये और दरवाजे खुल गये। संघ में आनन्द का पार न रहा। ठाकुर बडा लज्जित हुआ और आप से क्षमा मांगने लगा।

ऐसे ही भाववाही और लोकप्रिय स्तवन, स्तुति, सज्झाय आदि आपके है।

आचार्य श्रीलक्ष्मीसूरि (आनन्दसूरि गच्छ के ६६ वें पट्टधर)

आ० श्री विजयमानसूरि के शिष्य आ० श्री विजयऋद्धिसूरि (६४) के शिष्य आ० श्री विजयसौभाग्यसूरि (६५) के शिष्य आ० श्री विजयलक्ष्मीसूरि हुए। इनका जन्म सिरोही (राज.) जिले के सिरोडी और हणादरा के बीच पालडी गाँव में वि.सं. १७९७ में हुआ। दीक्षा और आचार्यपद वि.सं. १८१४ में हुआ।

आप विद्वान् और कवि थे। 'उपदेशप्रासाद' अष्टाह्निका व्याख्यान, वीसस्थानकपूजा, ज्ञानपंचमी देवनंदन, स्तवन, सज्झाएँ आदि आपकी ग्रन्थ रचनाएँ है। सिरोही नरेश वैरिशल्य और गायकवाड नरेश दामाजी आपके उपदेश से प्रभावित थे। वि.सं. १८५८ में आपका स्वर्गवास हुआ।

पं. श्री रूपविजय गणि (संवेगी शाखा के ६८ वें पट्टधर)

पं. श्री पद्मविजय गणि के शिष्य पं. रूपविजय गणि हुए। ये कवि और विद्वान् हुए। वि.सं. १८८२ से १८८९ तक इन्होंने 'पृथ्वीचन्द्र चरित' तथा 'विंशस्थानक', 'पैतालीस आगम', 'पंचज्ञान' और 'पंचकल्याणक' की पूजाएँ रचीं। आपके शिष्य श्री अमीविजय हुए। अमीविजय के शिष्य श्री कुंवरविजय ने अष्टप्रकारी पूजा रची। श्री अमीविजय (दूसरे) के शिष्य श्री सौभाग्यविजय के शिष्य श्री मोहनविजय के शिष्य श्री धर्मविजय के शिष्य आ० श्री सुरेन्द्रसूरि हुए जिनके शिष्य-प्रशिष्य आ० श्री रामसूरि (डहेलावाले) आदि हैं। पं. श्री रूपविजय गणि का स्वर्गवास वि.सं. १९१० में हुआ। कविवर श्री मोहनविजय लटकाला विद्वान् इसी समय हुए। तीर्थोद्धारक आ० श्री विजयनीति सूरि भी पं. श्री रूपविजय गणि की परम्परा में हुए जिनके शिष्य आ० श्री विजयहर्षसूरि के शिष्य आ० श्री विजयमहेन्द्रसूरि और आ० श्री विजयमंगलप्रभसूरि हुए। इन्हीं के शिष्य प्रशिष्य आ० श्री विजयअरिहंत-सिद्धसूरि आ० श्री विजयहेमप्रभसूरि आदि है।

कविराज श्री दीपविजय

आनन्दसूरिगच्छ के आ० श्री विजयसमुद्रसूरि के आज्ञावर्ती और पं. प्रेमविजय गणि के शिष्य पं. रत्नविजय गणि के शिष्य श्री दीपविजय लोकप्रिय कवि थे।

उदयपुर के राणा भीमसिंह ने 'कविराज' और गायकवाड नरेश ने 'कवि-बहादुर' का इन्हें बिरुद दिया था । इनकी काव्यरचना रास, स्तवन, पत्र, स्तुति, सज्झाएँ वि.सं. १८५२ से १८९० तक की उपलब्ध हैं । 'सोहमकुलरत्न पट्टावलीरास' आपकी ऐतिहासिक रचना है ।

शेठ मोतीशाह और श्री जिनभक्ति

शेठ मोतीशाह बम्बई के साहसी व्यापारी, धर्मनिष्ठ और उदार थे । इन्होंने श्री शत्रुंजय गिरि पर विशाल टुंक का निर्माण करवाया जिसमें सैकडों जिनबिंब प्रतिष्ठित हैं । बम्बई के भायखला और भूलेश्वर लालबाग में विशाल मन्दिर बनवाये । पालीताना में विशाल धर्मशाला बनवाई एवं श्रीसिद्धगिरि का बडा संघ निकाला ।

एक बार शेठ राजमार्ग से गुजर रहे थे । तब देखा कि एक कसाई गाय को बाँधकर ले जा रहा है किन्तु गाय आगे बढना नहीं चाहती । शेठ ने अपने नौकर (भैया) को छुडाने के लिए भेजा, किन्तु कसाई माना नहीं और भैया यूं ही वापिस लौटा । तब शेठ ने भैया को आदेश दिया कि गाय को कैसे भी छुडाओ । भैया ने जाकर गाय की रस्सी काट दी । गाय एक और भाग गई । कसाई कुछ बोलता उससे पहिले भैया ने उसे कसकर एक थप्पड लगा दी । कसाई धडाम से जमीन पर गिर गया और भवितव्यता से उसके प्राण निकल गये ।

पूजा का प्रभाव

अदालत में मुकदमा चला । शेठ को फांसी की सजा सुनाई गई । फांसी के पूर्व शेठ से उनकी अन्तिम इच्छा पूछी गई । शेठ ने भायखला के मन्दिर में प्रभु-पूजा की इच्छा दिखाई । तब शेठ की इच्छा मान्य रखी गई और शेठ ने भी आज की यह पूजा अन्तिम पूजा जानकर बडे भाव से प्रभु को पूजा । नियत समय पर फांसी के तख्ते पर चढाये गये और फांसी का फन्दा गले में डाला गया किन्तु दूसरे ही क्षण फन्दा टूट गया । देखने वालों को आश्चर्य हुआ । यह समाचार इंग्लेंड महारानी विक्टोरिया को पहुँचाए गये और पुनः फांसी पर चढाने का आदेश हुआ । दूसरी बार भी फांसी का फन्दा टूट गया । देखने वालों के

आश्चर्य की सीमा न रही । ये समाचार पुनः आदेश के लिए इंग्लेंन्ड भेजे गये । महारानी विक्टोरिया का आदेश आया कि यह कोई महान् व्यक्ति है । ईश्वर का दूत है । अतः पूरे सन्मान के साथ BARONET की पदवी उन्हें दी जाय । इस तरह शेठ को 'बेरोनेट' की पदवी मिली जिसके प्रभाव से फांसी के स्थान के पास से सेठ की बग्घी के निकलने मात्र से फांसी के लिए उपस्थित व्यक्ति की फांसी माफ हो जाती थी । यह हुआ वर्तमान काल में श्री जिन-पूजा का प्रत्यक्ष प्रभाव ।

सेठ का स्वर्गवास वि.सं. १८९२ में हुआ । शत्रुंजय पर निर्मित टुंक की प्रतिष्ठा उनकी पत्नी सेठानी दीवालीबाई और उनके पुत्र खीमचंद ने वि.सं. १८९३ में बम्बई से 'छ'री पालित बडे संघ के साथ जाकर करवाई । उसमें लाखों का द्रव्य व्यय किया ।

सन् १८५७ की क्रान्ति और कंपनी राज्य की समाप्ति

ई.सन् १८५७ में डलहौजी के शासनकाल में दिल्ली के बादशाह बहादुरशाह जफर के नेतृत्व में मेरठ की छावनी से क्रान्ति का प्रारंभ हुआ । जिसमें बहादुर-शाह को बन्दी कर रंगून भेजा गया । झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई वीरगति पाई ।

इस प्रकार भारतीय लोगों को कुचलने से ई.स. १८५८ में कम्पनी-राज्य सफल हुआ और महारानी विक्टोरिया भारत की शासिका बनी ।

पं. श्री कीर्तिविजय गणि और पं. श्री कस्तूरविजय गणि

(संवेगी शाखा के ६९ वें और ७० वें पट्टधर)

पं. श्री रूपविजय गणि के शिष्य पं. श्री कीर्तिविजय हुए । आपके शिष्य श्री जीवविजय हुए, जिन्होंने 'सकल तीरथ वंदू कर जोड' स्तवन की रचना की । आपके शिष्य श्री उद्योतविजय के शिष्य श्री अमरविजय के शिष्य श्री गुमानविजय के शिष्य श्री प्रतापविजय के शिष्य आ० श्री माणिक्यसिंहसूरि हुए । उन्होंने वि.सं. १९७६ में 'श्री महावीर पंच कल्याणक पूजा' और वि.सं. १९९९ में '[illegible]-पूजा' रची । पं. श्री कीर्तिविजय गणि के काल में ही कवि श्री चिदानन्द हुए जिनके वैराग्यविषयक पद प्रसिद्ध हैं । पं. श्री कीर्तिविजय गणि के शिष्य पं. श्री कस्तूरविजय गणि हुए ।

पं. श्री मणिविजय (दादा) गणि

(संवेगीशाखा के ७१ वें पट्टधर)

पं. श्री कस्तूरविजय गणि के शिष्य पं. श्री मणिविजय दादा हुए। वर्तमान में विचरने वाले विशाल संख्या के साधुओं के आप परमगुरु होने से 'दादा' के नाम से प्रसिद्ध हैं। आपके मुख्य शिष्य पं. श्री बुद्धिविजयजी (बुटेरायजी) गणि का शिष्यसमुदाय विशाल है। दूसरे शिष्य श्री पद्मविजय के परिवार में कच्छ-वागड देशोद्धारक श्री जितविजय दादा के शिष्य-प्रशिष्य आ. श्री विजयकनकसूरि और आ० श्री विजयशान्तिचन्द्रसूरि के शिष्य-प्रशिष्यों में आ. श्री विजयकलापूर्णसूरि और आ. श्री विजयकनकप्रभसूरि मुख्य है। आपके सबसे छोटे शिष्य संघ-स्थविर आ. श्री विजयसिद्धिसूरि के शिष्य आ. श्री विजयमेघसूरि के शिष्य आ. श्री विजयमनोहरसूरि के शिष्य-प्रशिष्यों में आ. श्री विजयभद्रंकरसूरि मुख्य है। वि.सं. १९३५ में आपका स्वर्गवास हुआ।

पं. श्री बुद्धिविजय (बुटेरायजी) गणि

(संवेगी शाखा के ७२ वें पट्टधर)

पं. मणिविजय (दादा) गणि के शिष्य पं. बुद्धिविजय (बुटेरायजी) गणि हुए। मूर्ति और मन्दिरों का अपलाप करने वाले ढुंढक-मत का त्यागकर आपने संवेगी मार्ग अपनाया। आप अत्यन्त भवभीरु, वैरागी, शुद्धसंयमी, तपस्वी और आगमों के ज्ञाता थे। आपने अनेक बार उपवास और आयंबिल के बडे-बडे तप किये। पंजाब की कडी ठंड में वस्त्रों को निकालकर रात भर आप ध्यान में बैठे रहते थे। 'मुहपत्ति-चर्चा' आपका रचा अद्‌भुत ग्रन्थ है जिसमें करीब पचास आगमिक प्रमाणों से मुहपत्ति हाथ में रखना सिद्ध किया है। पंजाब के अनेक शहरों में आपने स्थानकवासियों को वाद में पराजित किया। आपका स्वर्गवास वि.सं. १९३८ में हुआ।

आपके मुख्य शिष्य पं. मुक्तिविजयजी (मूलचंदजी) गणि आपके बाद तपागच्छाधिपति हुए। ये अत्यन्त शान्त स्वभावी और निःस्पृह थे। इनके प्रति अन्य समुदाय के विद्वान् साधु भी समर्पित थे। दयानन्द सरस्वती इसी समय में हुए जिन्हें इनकी प्रेरणा से उदयपुर में पं. श्री झवेरसागरजी ने वाद में पराजित किया

था। पं. श्री मुक्तिविजय गणि के शिष्य आ. श्री कमलसूरि (पालीताणा वाले) वि.सं. १९७४ में स्वर्गवासी हुए जिनके शिष्य - प्रशिष्य मुनि श्री चारित्रविजयजी एवं महान् इतिहासवेत्ता मुनि श्री दर्शन-ज्ञान-चारित्रविजय त्रिपुटी महाराज के नाम से प्रसिद्ध हुए।

आपके दूसरे शिष्य श्री बुद्धिविजयजी हुए, जिनके मुख्य शिष्य महान् शासनप्रभावक आ. श्री नेमिसूरि और आ. श्री धर्मसूरि (काशीवाले) हुए, जिनकी शिष्य-प्रशिष्य परम्परा में आ. श्री मेरुप्रभसूरि आ. श्री भक्तिसूरि (समीवाले) के शिष्य आ. श्री प्रेमसूरि और पं. श्री पूर्णानंद गणि (कुमार श्रमण) आदि हैं।

आपके तीसरे शिष्य श्री नीतिविजय (दादा) हुए, जिन्होंने खंभात में जैन-शाला संघ की स्थापना की एवं 'विहरमान वीस जिनों की पूजा' रची।

संवेगीशाखा के आद्य आचार्य श्री विजयानन्दसूरि
(आत्मारामजी ७३ वें पट्टधर)

पं. श्री बुद्धिविजय गणि के लघु शिष्य आ. विजयानन्दसूरि हुए। आपने भी १८ साधुओं के साथ ढूंढक मत का त्याग कर वि.सं. १९३२ में संवेगी मार्ग स्वीकार किया। आप इस सदी के अद्वितीय शासनप्रभावक थे। वि.सं. १९४३ में श्री संघ ने आपको संवेगी शाखा के आद्य आचार्य के रूप में प्रतिष्ठित किया। आप समर्थ विद्वान्, वादी और वक्ता थे। कुमतियों को आपने स्थान-स्थान पर निरुत्तर किया। दयानन्द सरस्वती को भी आपने वाद के लिए ललकारा था।

वि.सं. १९५२ में आप 'अर्हन्...अर्हन्...अर्हन्' 'लो भाई हम चल रहे है और सबको खमाते है' एवं पुनः 'अर्हन्' के उच्चारण के साथ स्वर्गवासी हुए।

'तत्त्वनिर्णयप्रासाद' 'अज्ञानतिमिरभास्कर' 'सम्यक्त्वशल्योद्धार' 'तत्त्वादर्श', सत्तरभेदी पूजा, वीशस्थानकपूजा' वगैरह आपकी अनुपम ग्रन्थ रचना है।

आचार्य श्री विजयकमलसूरि (संवेगी शाखा के ७४ वें पट्टधर)

आ. श्री विजयानन्दसूरि के साथ वि.सं. १९३२ में आ. श्री विजयकमलसूरि ने भी संवेगी मार्ग स्वीकारा था और उनके मुख्य शिष्य श्री लक्ष्मीविजय के शिष्य बने

थे। वि.सं. १९५२ में आ. श्री विजयानन्दसूरि के स्वर्गवास के बाद वि.सं. १९५७ में समग्र समुदाय ने आपको उनके पट्ट पर आचार्य पद देकर प्रतिष्ठित किया और उनके शिष्य सिद्धवचनी कविवर श्री वीरविजय को उपाध्याय पद पर प्रतिष्ठित किया। 'सलाह सबकी सुननी, लेकिन करना वही जो शासन ने फरमाया है' आचार्य पद आरूढ होने वाले के लिए आपके मुखकमल से निकले हुए ये मन्त्राक्षर हैं। ब्रह्मतेज से देदीप्यमान आपकी धर्मदेशना शासन-रक्षा के लिए सिंह-गर्जना के समान थी।

आपने अपने पट्ट पर वि.सं. १९८१ में उपाध्याय श्री वीरविजय के शिष्य पं. श्री दानविजय को और अपने शिष्य श्री लब्धिविजय को आचार्य पद देकर प्रतिष्ठित किया। व्याख्यान वाचस्पति आचार्य श्री लब्धिसूरि समर्थ विद्वान्, वादी और वक्ता हुए। उनके प्रवचनों से पंजाब में बडी संख्या में लोगों ने मांसाहार का त्याग किया था। आपने अनेक वादों में विजय पायी थी। संस्कृत भाषा में घंटों तक धारावाही प्रवचन करने वाले आप अनुपम शासनप्रभावक थे। आपके रचे स्तवन और सज्झाय लोकप्रिय हैं।

आपके परिवार में आ० श्री भुवनतिलकसूरि और आ० श्री विक्रमसूरि के शिष्य प्रशिष्य आ० श्री विजयभद्रंकरसूरि आ० श्री विजयनवीनसूरि आदि है।

इसी समय श्री लक्ष्मीविजय के शिष्य पं. श्री हर्षविजय के शिष्य आ० श्री विजयवल्लभसूरि हुए जिनका प्रभाव आज भी पंजाब में है। इनके परिवार में आ० श्री विजयइन्द्रदिन्नसूरि आदि हैं।

सकलागमरहस्यवेदी आ. विजयदानसूरि
(संवेगी शाखा के ७५ वें पट्टधर)

आ. श्री विजयकमलसूरि के पट्टधर और उपा० श्री वीरविजय के शिष्य श्री विजयदानसूरि स्व-परशास्त्रों के रहस्यवेत्ता, प्रौढ प्रतापी और निर्मलचारित्री थे। आप साधुओं की संयमरक्षा और ज्ञानवृद्धि के लिए सदा जागरूक रहते थे। वि.सं. १९९१ में अपने शिष्य उपा० श्री प्रेमविजय को आचार्य पद देकर अपने पट्ट पर प्रतिष्ठित कर आप वि.सं. १९९२ में स्वर्गवासी हुए।

सिद्धान्तमहोदधि आचार्य श्री विजय प्रेमसूरि
(संवेगी शाखा के ७६ वें पट्टधर)

आ. श्री विजयदानसूरि के पट्टधर आ० श्री विजयप्रेमसूरि का जन्म वि.सं. १९४०, दीक्षा वि.सं. १९५७, आचार्य पद वि.सं. १९९१ और स्वर्गवास वि.सं. २०२४ में हुआ। आप निर्मल चारित्र के स्वामी थे। तप, त्याग, वैराग्य, वात्सल्य और यतना के आदर्श प्रतीक थे। बाल-दीक्षा प्रतिबन्धक विधान और विधेयक को आपने अपूर्व कौशल से रद करवाया था। वर्तमान जैन शासन को बडी संख्या में साधुओं की भेंट एवं मार्गणाद्वार, संक्रमणकरण, कर्मसिद्धि और बंध-विधान की वृत्ति इत्यादि अपूर्व ग्रन्थों का सर्जन आपके जीवन की महान् सिद्धि है।

आपके शिष्य-प्रशिष्य परिवार में अहमदाबाद के भद्रकाली के मन्दिर में बलि बन्द कराने वाले व्याख्यानवाचस्पति आ० श्री रामचन्द्रसूरि, महान् तपस्वी आ० श्री राजतिलकसूरि, न्यायविशारद आ० श्री भुवनभानुसूरि, पं.प्र. श्री चन्द्रशेखर वि. म.सा. आदि हैं।

भारत की स्वतन्त्रता और देश के दो टुकडे

ई.सं. १९४७ में १५ अगस्त को भारत स्वतंत्र हुआ, किन्तु देश हिन्दुस्तान और पाकिस्तान दो टुकडों में विभाजित हुआ।

सागर-संविग्न शाखा की गुरु परम्परा

(५८) आचार्य श्री हीरविजयसूरि ।
(५९) उपाध्याय श्री सहजसागर ।
(६०) ,, ,, जयसागर ।
(६१) ,, ,, जितसागर ।
(६२) पं० ,, मानसागर ।
(६३) ,, मयगलसागर ।
(६४) ,, पद्मसागर । (स्व. सं. १८२५ मे)
(६५) ,, सुज्ञानसागर । (स्व. सं. १८३८)
(६६) ,, स्वरूपसागर । (स्व. सं. १८६६)
(६७) ,, निधानसागर । (स्व. सं. १८८७)
(६८) ,, मयगलसागर ।

(६९) गौतमसागर ।	(६९) नेमिसागरजी ।
(७०) झवेरसागर ।	(७०) रविसागरजी ।
(७१) आचार्य आनन्दसागरसूरि ।	(७१) सुखसागरजी ।
(७२) ,, माणिक्यसागरसूरि ।	(७२) आचार्य बुद्धिसागरसूरि । (सं. १९८१ स्वर्ग.)
	(७३) आ० अजितसागरसूरि ।
	(७४) आ० ऋद्धिसागरसूरि ।
	(७५) आ० कीर्तिसागरसूरि ।

आचार्य श्री आनन्दसागरसूरि (७१) बडे विद्वान् और तार्किक थे । आपके उपदेश से आगम-मन्दिरों का निर्माण एवं मुद्रित आगमों का प्रकाशन हुआ । इनके परिवार में आ० श्री माणिक्यसागरसूरि आ० श्री देवेन्द्रसागरसूरि, उपा० श्री धर्म-सागर आदि के शिष्य--प्रशिष्य आ० श्री दर्शनसागरसूरि आ० श्री चिदानन्दसागरसूरि आदि हैं ।

आ० श्री कीर्तिसागरसूरि (७५) के परिवार में आ० श्री सुबोधसागरसूरि आ० श्री कैलाशसागरसूरि, आ० श्री पद्मसागरसूरि आदि हैं ।

विमल-संविग्न शाखा की गुरु-परम्परा

(५६) आनन्दविमलसूरि
(५७) ऋद्धिविमलजी
(५८) कीर्तिविमलजी
(५९) वीरविमलजी
(६०) महोदयविमलजी
(६१) प्रमोदविमलजी
(६२) मणिविमलजी
(६३) उद्योतविमलजी
(६४) दानविमलजी
(६५) पं० दयालविमलजी
(६६) पं० सौभाग्यविमलजी
(६७) पं० मुक्तिविमलजी (स्व. १९७४ में)
(६८) आ० रंगविमलसूरि (सं. २००५ में आचार्य-पद)

आचार्य श्री रंगविमलसूरि का स्वर्गवास हो गया है । इनके शिष्य-परिवार में थोडे मुनिराज हैं ।

'जैन इतिहास' की यह पुस्तिका उपाध्याय श्री धर्मसागर गणि के 'श्री तपागच्छ पट्टावली सूत्र', पं० श्री कल्याणविजय गणि के 'श्री पट्टावली पराग संग्रह' त्रिपुटी महाराज के 'जैन परम्परा नो इतिहास', मुनि श्री दर्शनविजय (त्रिपुटी) के 'पट्टावली-समुच्चय' वगैरह इतिहास की पुस्तकों का आधार लेकर एवं विश्वसनीय महापुरुषों से सुनी हुई बातों के आधार पर लिखी है । विद्वज्जनों से क्षतियों के सम्मार्जन हेतु प्रार्थना है ।

इस प्रकार देव गुरु के प्रसाद से राजस्थानान्तर्गत श्री सिरोही जिले के श्री झाडोली गांव में श्री युगादीश के सान्निध्य में यह पुस्तिका पूर्ण हुई । वि.सं. २०४६ भाद्रपद शुक्ल चतुर्दशी दि. १४-९-१९८९ ।

आयड तीर्थोद्धारक, वैराग्यवारिधि
प.पू.आचार्य श्री कुलचंद्रसूरीश्वरजी म.सा.नी
लेखित-संपादित-प्रेरित साहित्ययात्रा

२६. कौन बनेगा गुरुगुण ज्ञानी - (गुजराती)
२७. सुबोध प्राकृत विज्ञान पाठमाला (प्राकृत बुक)
२८. जैन इतिहास (हिन्दी)
२९. जैन इतिहास (गुजराती)
३०. जैन इतिहास (अग्रेजी)
३१. जैन श्रावकाचार - (हिन्दी)
३२. जैन श्रावकाचार - (गुजराती)
३३. जीव से शिव तक - (हिन्दी)
३४. तत्व की वेब साइट - (हिन्दी)
३५. ओघो छे अणमूलो... (दीक्षा गीत संग्रह)
३६. सुबोध संस्कृत धातु रूपावली भाग-१ (पोकेट साईज)
३७. सुबोध संस्कृत धातु रूपावली भाग-२ (पोकेट साईज)
३८. सुबोध संस्कृत धातु रूपावली भाग-३ (पोकेट साईज)
३९. सुबोध संस्कृत धातु रूपावली भाग-४ (पोकेट साईज)
४०. श्राद्धविधि प्रकरण (हिन्दी)
४१. न्याय सिद्धांतना मूळभूत १०८ नियमो
४२. सप्ततिशतस्थानप्रकरण
४३. दशाश्रुतस्कंध (नव्य टीका सहित)
४४. पंचकल्पभाष्य (नव्य टीका सहित)
४५. भगवतीसूत्र (अनुवाद भाग १ से ४)
४६. जैन धर्म के विविध प्रश्नोत्तर
४७. आगम सारोद्धार
४८. जीवविचारादि प्रकरण चतुष्टयम् (टीका सहित)
४९. भावश्रमण
५०. विशेषणवती (सटीक)

Rajul Arts
97697 91990
98693 90285